देवेन्द्र उपाध्याय

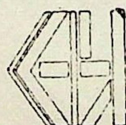
उसके हिस्से में



उसके हिस्से में

उसके हिस्से में

देवेन्द्र उपाध्याय


सचिन प्रकाशन

प्रकाशक : अनिल पालीवाल
सचिन प्रकाशन,
7/34, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

मूल्य : तीस रुपये

आवरण : हरिप्रकाश त्यागी

प्रथम संस्करण : 1989

मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

अनुक्रम

उसके हिस्से में

कोई नहीं

अचानक शिरीष को देखकर वह चौंक पड़ा। महीनों बाद शिरीष आया और वह समझ नहीं पाया कि अपने आप ही न आने वाला शिरीष आज अचानक कैसे ! उसने तो स्वयं ही आना-जाना बन्द कर दिया।

कभी-कभी कोई छोटी-सी घटना भी बहुत परेशान करने लगती है। यह परेशानी आदमी को मानसिक रूप से अशांत कर देती है, ऐसा ही कुछ शिरीष के मामले में भी हुआ।

शिरीष के साथ सम्बन्ध घनिष्ठ होते चले गए। बहुत दूर का कोई रिश्ता था। लेकिन कभी-कभी दूर के रिश्ते भी बहुत करीबी हो जाते हैं और करीबी भी दूर होते चले जाते हैं। शिरीष परिवार के एक सदस्य के रूप में कब परिवार से जुड़ गया, कुछ पता नहीं, पर हां, वह परिवार का ही सदस्य बन गया। दूसरे शहर में नौकरी करते हुए भी महीने में एक-दो बार जरूर आ जाता। बहुत दिनों तक उसकी खोज-खबर न मिलती तो अजीब-सी परेशानी महसूस होती। बच्चों से तो बहुत ज्यादा घुलमिल गया इसलिए बच्चे भी उसे अक्सर याद करते।

"शिरीष अंकल क्यों नही आए ? कब आयेंगे ? उन्हें चिट्ठी लिख दो न पापा।"

तब उसे चिट्ठी लिखनी पड़ती। चिट्ठी लिखने पर तो वह चला ही आता था। ऐसा था शिरीष। अपने सारे दुख-सुख बांटने में उसे खुशी होती, सांत्वना-सी मिलती। परिवार के सदस्यों के लिए तो सगे से भी ज्यादा हो गया। वह आता तो बच्चे खुशी से झूम उठते।

उसे याद आया। एक बार बीमारी की हालत में हफ्ते-भर से ज्यादा

रहा था। तब पत्नी ने उसकी तीमारदारी में कोई कोर-कसर न रखी। ऐसे कई मौके आए जब वह दो-तीन दिन रह जाता।

धीरे-धीरे उसका आना कम होता चला गया। आता भी तो बस दो-चार घण्टे के लिए। अब तो उसने ज्यादा बोलना भी छोड़ दिया। ऐसा लगता जैसे भीतर-ही-भीतर वह किसी गम में घुला जा रहा है। पूछने पर बातों को हवा में उड़ा देता।

जिसके साथ वर्षों तक करीब के सम्बन्ध रहे हों और वह अचानक दूर होता चला जाय। तब मन में बड़ी पीड़ा होती है। ठीक यही शिरीष के मामले में भी हुआ। पहले तो कई बार वह अपने किसी दोस्त के साथ भी चला आता।

इस बीच शिरीष का आना-जाना बन्द हो गया। लोगों से पता चला कि आजकल वह अपने एक नजदीकी रिश्तेदार के यहां बहुत आता-जाता है। हर हफ्ते वह उस कालोनी में दीख जाता। वह दूर से दिखाई देता। पहले उसे लगा कि यह उसका भ्रम है। पर जब कुछ लोगों ने उसे बताया तो उसे विश्वास हो गया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। आश्चर्य इस बात का नहीं कि शिरीष वहां क्यों आता है। बल्कि आश्चर्य तो इस बात का हुआ कि जो शिरीष उसके कई बार कहने के बावजूद अपने उन रिश्ते-दार के यहां जाने से कतराता रहा वह अचानक कैसे जाने लगा। शिरीष के वे नजदीकी रिश्तेदार वर्षों से उस कालोनी में थे। शिरीष शायद इन पांच-सात वर्षों में एक बार भी नहीं गया।

अब शिरीष महीने में कई बार उस कालोनी में लोगों को दिखाई देता। उसके कई दोस्तों ने अक्सर पूछा—"शिरीष आया था क्या?"

वह क्या जवाब देता। इन दोस्तों में कइयों के साथ उसके घर में ही शिरीष से परिचय हुआ था।

उसने पत्नी और बच्चों को भी नहीं बताया कि शिरीष अक्सर उस कालोनी में आता है। बच्चे अक्सर उसके बारे में पूछते। पत्नी ने भी कई बार शिरीष के बारे में पूछा—"शिरीष क्यों नहीं आता? तुमने तो कभी कुछ उससे नहीं कह दिया?"

अचानक पत्नी को भी शिरीष के बारे में पता लगा। उसे बहुत ठेस

लगी। शिरीष को अपने छोटे भाई से भी बढ़कर उसने स्नेह दिया। अब वही शिरीष कन्नी काटने लगा। कई बार तो वह बस स्टाप पर भी दिखाई दिया। एक बार वह चलती हुई बस में दिखाई दिया तब उसने चुपचाप एक स्टाप पहले ही बस छोड़ दी। जब शिरीष मिलना ही नहीं चाहता तो क्यों उसके सामने पड़ा जाय।

एक बार पत्नी को वह कालोनी में ही बाजार में मिल गया। उसके बाद भी वह घर नहीं आया। जब किसी व्यक्ति पर कोई अधिकार ही न हो तो क्यों उस पर जबर्दस्ती अधिकार लादा जाय। ठीक भी है, आखिर शिरीष उनका लगता भी क्या है। सिर्फ यही कि दूर का रिश्तेदार और दूर के रिश्तेदारों की कमी तो नहीं है।

शिरीष की नौकरी अच्छी थी। पैसा भी खूब कमाता। उसके मां-बाप उसके ब्याह न करने के कारण परेशान थे। उसने भी एक-दो बार चर्चा छेड़ी। पर शिरीष के मन में क्या था, यह पता नहीं चलता। वह बात को टाल जाता। एक-दो जगह उसके पिता ने बात चलाई पर बात आगे नहीं बढ़ पायी।

कुछ दिनों सुना कि शिरीष की सगाई हो गयी। सुनकर उसे अच्छा लगा। शिरीष एक बार चलते-चलते आया भी पर उसने इस बात का कोई जिक्र नहीं किया। उसने यह भी नहीं बताया कि वह अपने दोस्त के साथ लड़की को देख भी आया। उसे बताने की आखिर जरूरत भी क्या थी। वह शिरीष का लगता भी क्या है। दुनिया में कौन किसकी परवाह करता है। अपने भाई और औलाद ही जब कन्नी काटने लगते हैं तो फिर शिरीष के साथ तो बहुत दूर का ही सम्बन्ध है। शिरीष का दोष भी क्या है। जिस आदमी पर विश्वास किया जाता है उसे ही तो विश्वास में लिया जाता है।

किसी से पता चला कि शिरीष का ब्याह तै हो गया है। उन नजदीकी रिश्तेदार का ही अपना कोई था। ब्याह की खबर सुनकर उसे खुशी हुई। शिरीष यह खबर देने के लिए भी नहीं आया। कई बार उसने शिरीष की याद को दिमाग से निकालने की कोशिश की पर निकाल नहीं पाया।

कुछ बरस पहले वह शिरीष से कहता था—"देखो शिरीष, हम लोग

बिन बुलाए भी तुम्हारी बारात में आयेंगे ।"

पर आज पूरी स्थिति ही बदल गयी । शिरीष पराया होकर अपना बन गया था और फिर अपना बनकर पराया हो गया । जहां सम्बन्धों की नींव बालू पर टिकी हो वहां कितने दिन तक नींव पक्की रह सकती है । एक-न-एक दिन तो नींव गिरेगी ही । उसे सम्बन्धों से अजीब वितृष्णा हो उठी ।

शिरीष आया अजनबी की तरह । अपनी शादी का कार्ड थमा गया । वह चाहते हुए भी उसकी बारात में शामिल न होने के लिए मजबूर था । अगर शिरीष ने अधिकारपूर्वक कहा होता तो उसे अच्छा लगता । पर यहां तो सिर्फ खानापूरी थी । ऐसी खानापूरी वह कभी पसन्द नहीं करता ।

शिरीष चला गया । वह शिरीष की औपचारिकता को सहन नहीं कर पाया । सारी रात उसे नींद नहीं आयी । सुबह उठा तो सिर भारी था । तब उसने तै कर लिया कि अब शिरीष के बारे में कभी कुछ नहीं सोचेगा ।

लेकिन न जाने क्यों वह शिरीष को भूल नहीं पाया । किसी दोस्त से पता चला कि शादी के बाद भी दो-तीन बार शिरीष कालोनी में आ चुका है । इस बार तो यह सुनकर उसे धक्का-सा लगा । फिर उसने शिरीष के प्रति अपने सारे प्यार और नफरत को एक झटके के साथ ही तोड़ दिया । वह अब तक बेकार में ही परेशान हो रहा था । पहली बार उसे कुछ राहत महसूस हुई ।

भ्रष्टाचार

विमल बाबू अपने विभाग में वर्षों से चल रहे भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष पर उतारू हो गए। उनके कई साथियों और शुभचिंतकों ने उन्हें बहुतेरा समझाने की कोशिश की, पर सब विफल रहे।

उनके विभाग के दूसरे बाबू हैरत में थे कि आखिर विमल बाबू उनके पैरों पर खुद ही कुल्हाड़ी मारने पर क्यों तुले हुए हैं।

विमल बाबू माल विभाग में 20 वर्ष से भी ज्यादा समय से काम कर रहे थे। कई अफसर और माल बाबू आए-गए, पर वे वहीं जमे रहे। विमल बाबू को अफसर बनने में कोई दिलचस्पी न थी। अफसर बनकर सिर्फ अफसर ही रहते। यहां तो बड़े अफसर तक उनकी मुट्ठी में थे।

एक दिन सुबह-सुबह शर्माजी मेरे घर पहुंचे। उनके साथ एक और सज्जन थे। शर्मा जी ने परिचय कराया—"विमल बाबू हैं। हम साथ ही काम करते हैं। आपसे मिलना चाहते थे।"

"भई, माल विभाग वालों का मुझसे क्या काम हो सकता है? न मैंने कभी किसी को कोई माल भेजा और न किसी ने मुझे भेजा। फिर भी बताइए।"

विमल बाबू मुस्कराने लगे। फिर शर्मा जी ही बोले—"यहां माल विभाग में इन्हें बीस साल से ज्यादा हो गए हैं, इससे पहले कई स्टेशनों पर काम कर चुके हैं। पांच साल बाद रिटायर हो जायेंगे।"

"शर्मा जी, पहेली मत बुझाइए। नौकरी और रिटायरमेंट से मेरा क्या लेना-देना। आपके महकमे में मेरा कुछ है ही नहीं।"

शर्मा जी ने तब बात आगे बढ़ाई—"नहीं, महकमे के बारे में आपको

कष्ट देने नहीं आए हैं। बात ऐसी है कि अपने माल विभाग में 'करप्शन' बहुत है। विमल बाबू उसी 'करप्शन' के खिलाफ लड़ना चाहते हैं। इनके, पास ठोस सबूत है। किसी अखबार में छप जाए तो कई लोगों की कलई खुल जाएगी। आप अपने यहां ही अगर कुछ छाप दें और अपने मित्रों से भी मिला दें।"

"क्या इतने वर्षों की सेवा में विमल बाबू को भ्रष्टाचार का पता नहीं चला। अचानक यह भ्रष्टाचार कैसे पनप गया आपके विभाग में?"

अब विमल बाबू ने मुंह खोला। अभी तक वे चुप थे। वे हल्का-सा मुस्कराए और फिर कहने लगे—"बात आप सही कह रहे हैं। भ्रष्टाचार तो इस विभाग से जुड़ गया है। बिना भ्रष्टाचार के आप हमारे विभाग की कल्पना ही नहीं कर सकते। साफ बात बता दू, जो आदमी यहां दस्तूरी नहीं लेता वह ज्यादा दिन तक टिक ही नहीं सकता। ईमानदार आदमी यहां से अपना तबादला करा लेता है या फिर अफसर ही ऐसे आदमी को अपने यहां से हटवा देते हैं।"

अब तक मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था। विमल बाबू का चरित्र बड़ा रहस्यपूर्ण लगने लगा। एक तरफ तो कह रहे हैं कि यहां ईमानदार आदमी के लिए जगह नहीं है दूसरी तरफ खुद बीस सालों से टिके हुए हैं और फिर भ्रष्टाचार की पोल भी खोलना चाहते हैं।

"विमल बाबू, साफ-साफ बताइए। आप चाहते क्या हैं?"

"साहब, मैं चाहता हूं कि इस विभाग के भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ हो।"

इतनी देर में पत्नी चाय रख गई। विमल बाबू ने चाय की चुस्की लेने के बाद फिर कहा—"आपके बारे में शर्मा साहब ने बताया था। कई बार ये आपका जिक्र करते रहे हैं। कई दिनों से मिलने की सोच रहा था। आज किसी तरह मौका निकालकर आया हूं। अपने साथ मैं कागज लेकर आया हूं। आप इनको छापिए, पूरे देश में तहलका मच जाएगा।"

विमल बाबू से मैंने कागज ले लिये। एक सरसरी निगाह उन पर दौड़ाई। खबर तो बन ही सकती है।

मैंने उनसे कहा—"विमल बाबू, खबर तो बन जाएगी। आप चिन्ता न

करें। बुरा न मानें तो एक बात पूछूं ?"

"हां साहब पूछिए। जो पूछेंगे ईमानदारी से बताऊंगा। जब इतने बड़े भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने के लिए सिर पर कफन बांध लिया है तो फिर डर किस बात का।"

"तो यह बताइए, आपने अपनी जिन्दगी में कभी दस्तूरी नहीं ली ?"

"आप भी कमाल करते हैं साहब। पानी में रहकर मगरमच्छ से कैसे बैर ले सकता है। मैं भी आखिर बाल-बच्चेदार आदमी हूं। कभी किसी से मैंने मांगा नहीं। जो भी अपने आप दे जाय, वह ले लेता था। किसी ने अगर नहीं दिया तो उससे मांगा भी नहीं।"

"अचानक आपको यह इलहाम कैसे हो गया कि भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठानी चाहिए ?"

"ऐसा है न, अब रिटायरमेंट में पांच साल रह गए हैं। बुढ़ापे में अब ऐसा गलत काम करने का मन नहीं होता। अब तो बस राम का नाम लेकर बाकी जिन्दगी काट देना चाहता हूं।"

"अच्छा, ठीक है। देख लूंगा। दो-चार दिन में शर्मा को बता दूंगा कि कब खबर छपेगी।"

इसके बाद शर्मा जी के साथ विमल बाबू चले गए। विमल बाबू ने जो कागज दिया था उसे संभालकर रख दिया। काम की व्यस्तता के कारण उसे भूल गया। एक दिन सबेरे शर्मा जी आ धमके। उन्हें देखते ही कागज की याद आ गयी।

"बस शर्मा जी, इसी हफ्ते खबर बनाकर दे दूंगा। आप निश्चिन्त रहें।"

"तब से विमल बाबू रोज पूछते रहते हैं। छप गयी खबर? कब छप रही है ?"

मेरे मन में विमल बाबू के बारे में जानने की बड़ी उत्सुकता थी। अपनी उत्सुकता मैंने शर्मा जी के सामने रख दी। तब शर्मा जी ने विमल बाबू के बारे में विस्तार से बताया—"विमल बाबू अपने परिवार के साथ बंटबारे में यहां आ गए। आते ही इस महकमे में खलासी लग गए। धीरे-धीरे तरक्की करते-करते बाबू बन गए। तब से बाबू ही हैं, नाम से भी और

काम से भी। पढ़े-लिखे ज्यादा थे नहीं। आगे तरक्की होती भी तो कैसे ?

इन्होंने खूब पैसा कमाया। इसी नौकरी के बलबूते पर आज विमल बाबू के पास दो कोठियां हैं। कोठियां भी आलीशान कालोनी में। दो-तीन दुकानें अलग हैं। इनके तीन लड़के हैं और तीनों अच्छी पोस्ट पर हैं। लड़की और दामाद लेक्चरार हैं और आजकल इथोपिया में हैं। अब भी इतना पैसा है कि सोचते रहते हैं कहां और कैसे खर्च करें।''

''इतना पैसा कमाने के बाद विमल बाबू को भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष करने की इच्छा हो ही गयी। चलो अच्छा हुआ, सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली ही गयी।''

शर्मा जी हंसने लगे। फिर बोले—''किसी बात पर इनका अपने अफसर से झगड़ा हो गया। अफसर इनके साथ कभी बाबू था। इन्होंने उसे 'ट्रेंड' किया और आज वह इनका ही अफसर हो गया। ये वैसे ही खार खाए बैठे थे। अब वह इन्हीं पर रौब झाड़ता है।

''एक दिन उसने इनको बुलाकर बुरी तरह डांट दिया। सस्पेंड कराने की धमकी दी। विमल बाबू भला धमकी से डरने वाले थे। ये उन्हें सारी पोल खोलने और सी. बी. आई. से छापा डलवाने की धमकी देकर चले आए।

''अब इनके और अफसर के बीच तकरार शुरू हो गयी है। कहते हैं अफसर को टर्मिनेट कराकर दम लूंगा। खुद सस्पेंड या टर्मिनेट होने से नहीं डरते। अब खतरों से जूझना चाहते हैं।''

''तो आप भी 'दस्तूरी' लेते होंगे ?''

''नहीं, बिल्कुल नहीं। मैं उस महकमे में हूं भी और नहीं भी। अपना काम डीलिंग का है ही नहीं।''

''विमल बाबू से आपकी दोस्ती कैसे हो गयी ?''

''ये नेता किस्म के आदमी हैं। सारी तिकड़में जानते हैं। इनकी एक खूबी हैं कि ये अपने साथियों के साथ बहुत प्रेम से रहते हैं। दिल के बहुत साफ हैं, मुंहफट कह सकते हैं आप।''

शर्मा जी चले गए। दूसरे दिन भ्रष्टाचार की खबर बनाकर अखबार में दे दी। छप भी गयी। विमल बाबू को खबर का पता लग गया। सीधे

पांच सौ कापियां खरीदकर ले गए। चारों तरफ अखबार बंट गया। खूब हंगामा हो गया।

एक दिन अचानक रास्ते में विमल बाबू मिल गए। मैं उस दिन छुट्टी पर था। मिलते ही लपककर पकड़ लिया। पूछने लगे—"आफिस जा रहे हैं क्या?"

"नहीं, आज छुट्टी पर हूं। कहीं काम से जा रहा हूं।"

"तो घण्टे-भर के लिए मेरे गरीबखाने पर चलिए। फिर जहां कहिएगा वहीं छोड़ आऊंगा।"

मेरे कुछ जवाव देने से पहले ही उन्होंने एक तिपहिया रोक लिया। न चाहते हुए भी उनके साथ जाना पड़ा। आधे घण्टे के बाद हम उनके उस 'आलीशान' गरीबखाने पर थे। बहुत खूबसूरती से सजाया हुआ था। कीमती कालीन ड्राइंग रूम में बिछा हुआ था। नयनाभिराम पेंटिंग लगी थी। कई जगह मनीप्लांट लगे हुए थे। कीमती सोफे। मेरी आंखें चौंधिया गयीं। यह माल बाबू का घर है या किसी बहुत बड़े धन्ना सेठ का; मैं सोचता रह गया।

इतनी देर में ट्रे में ठण्डा पेय और मेवे आ गए। एक गिलास ठण्डा पेय पीकर ही तृप्त हो गया। विमल बाबू के बहुत जोर देने पर कुछ मेवे मैंने मुंह में डाल लिये।

"विमल बाबू; क्या हुआ उस खबर का?"

"अरे साहब, मत पूछिए, हंगामा हो गया, हंगामा। अफसर का 'ट्रांसफर' हो गया। पर जाते-जाते मेरा तबादला करा गया। तबादला भी कहां कराया पठानकोट। मैं मैडिकल लेकर बैठ गया हूं। बीस दिन हो गए हैं पूरे। अगर तबादला कैंसिल न हुआ तो इस्तीफा दे दूंगा। अब नौकरी का कोई लोभ नहीं है। अपने खून-पसीने की कमाई से यह घर बना लिया। बच्चे सब काम पर लग गए। अब कोई जिम्मेदारी नहीं रही। शेष जिंदगी अब भगवान के भजन में गुजार देना चाहता हूं।"

"क्या बात करते हैं आप विमल बाबू। जब तक रिटायर नहीं होते भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ते रहिए।"

विमल बाबू हो-होकर हंसने लगे। मेरा दम घुटने लगा था। मैंने जाने

की इजाजत मांगी। वे बोले—"अरे साहब, आपने मेरे इस गरीबखाने को पवित्र कर दिया। मैं धन्य हो गया। खाना खाकर जाइए। जो कुछ भी रूखा-सूखा हो खाना पड़ेगा।"

खाना खाने का कतई मन नहीं था। मैं उठ गया। वे बाहर तक आए। वे मुझे घर तक छोड़ने पर आमादा थे। किसी तरह उनसे पिंड छुड़ाकर मैं बस-स्टाप पर पहुंच गया।

शायद दो-ढाई महीने बीत गए थे। इतवार का दिन था। शाम को बैठा मैं एक उपन्यास पढ़ रहा था, तभी शर्मा जी के साथ विमल बाबू आ धमके। आते ही मुबारकबाद देने लगे।

"विमल बाबू, मुबारकबाद मुझे किस बात की दे रहे हैं।"

"ट्रांसफर आर्डर कैंसिल करा ही लिया। पिछले हफ्ते ज्वाइन भी कर लिया। पूरे दस हजार रुपए खर्च हो गए आर्डर कैंसिल कराने में। चारों तरफ भ्रष्टाचार। दस हजार रुपए गए, कोई बात नहीं। पर उस अफसर के बच्चे को भी पता चल गया।"—यह कहते ही विमल बाबू ने मिठाई का डिब्बा थमा दिया।

"अरे यह क्या?"

"कुछ नहीं साहब, भ्रष्टाचार के खिलाफ मैं जो लड़ाई लड़ रहा हूं, उसकी पहली जीत की खुशी में। आपकी मदद के बिना मैं कामयाब नहीं हो सकता था।"

इसके बाद वे रुके नहीं। जिस तेजी से आए थे उसी तेजी से चले गए। मैं फिर उपन्यास पढ़ने में तल्लीन हो गया।

अर्से बाद, एक दिन फिर विमल बाबू दफ्तर में आए। वे रिटायर हो गए। उनके सहयोगियों ने उन्हें होटल में विदाई पार्टी दी थी। उसी का कार्ड देने आए थे। अपनी व्यस्तता के कारण मैं समारोह में नहीं जा पाया।

कुछ दिन बाद शर्मा जी मिलने के लिए आ गए। बातों-बातों में विमल बाबू का जिक्र चल पड़ा। शर्मा जी ने बताया—"अब विमल बाबू ने सत्संग मण्डली बना ली है, किसी-न-किसी मोहल्ले में रोज सत्संग चलता है।

लोगों को अब वे उपदेश देते हैं। अब तो उनसे मुलाकात भी कम ही होती है। सत्संग से हर रोज खूब कमा लेते हैं। दूसरों का परलोक सुधारने में लगे हुए हैं।"

मेरे सामने भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष छेड़ने वाले विमल बाबू का चेहरा चमक उठा।

एक कहानी

दूर-दूर तक छिटके हुए गांव। चारों ओर पहाड़ों से घिरे हुए गांवों को दूर-दूर से देखकर ऐसा लगता है मानो स्वर्ग ही धरती पर उतर आया है। पहाड़ों की इस हरियाली में हवा भी है और पानी भी—सारी थकान उतर जाती है।

एक दोपहरी थी जाड़ों की। भीतर कंपकंपी छूट रही थी। ठंड के मारे और लोग अपने-अपने आंगन में धूप का आनन्द ले रहे थे। तभी एक काफिला आता हुआ दिखायी दिया। लोगों की निगाह दूर मोड़ से आते हुए काफिले पर ठहर गयी। 8-10 आदमियों का यह काफिला कोट गांव की तरफ ही आ रहा था।

साल भर पहले भी एक ऐसा ही काफिला इन गांवों में आया था। माप-जोख की गयी थी पैमाइश हुई। तब गांव के लोगों को पता चला कि गांवों के आस-पास की नंगी चट्टानें टूटेंगी। सब सिलखड़ी की चट्टानें हैं। लोगों ने सोचा कि उन्हें घर बैठे ही रोजगार मिल जायेगा। वे उस दिन से ही सपने देखने लग गये।

सपने तो सुदूर के इन गांवों के लोग हमेशा से ही देखते आ रहे हैं। पीढ़ियां गुजर गयी हैं, सपने देखते-देखते सुबह के अंधेरे से लेकर रात के अंधेरे तक खेतों में काम। जाड़ा हो, गर्मी हो या बरसात—बस काम ही काम। खेत हाड़मांस गलाने के बाद भी धोखा दे जाते हैं। कभी सूखा पड़ जाता है, कभी अतिवृष्टि हो जाती है। फसलें ऐसे ही खत्म हो जाती हैं। साल भर के तीन-चार महीने के लिए भी पेट भर अनाज नहीं हो पाता, फिर भी इन खेतों में खटते रहते हैं।

काफिला नजदीक-नजदीक आ गया। लोग उत्सुकता से देखने लगे। काफिले में कुछ सरकारी कारिंदे थे और कुछ लोग। इन कुछ लोगों में ठेकेदार था जिसने सिलखड़ी की चट्टानें तोड़ने का ठेका ले लिया था। उसके ही कुछ और लोग भी साथ थे।

सिलखड़ी की खुदाई का काम शुरू हो गया। गांवों के जंगलों की घेरेबंदी हो गयी। गांव वालों को लकड़ी और घास काटने की मनाही हो गयी। गांव वालों को रोजगार तो घर बैठे मिल गया, पर एक नयी मुसीबत की शुरुआत हो गयी। पांच मील के घेरे में जंगल गांव वालों के लिए पराया हो गया। वह जंगल जहां गांव के बच्चे अपने पशु चराते थे। औरतें जहां से घास और लकड़ियां काटती थीं।

गांव वालों को अब दूर के जंगलों में घास-लकड़ी के लिए जाना पड़ रहा था। पूरा दिन एक-एक गट्ठर घास और लकड़ी लाने में बीत जाता था। पानी का रंग भी अब सिलखड़ी के कारण दूधिया होने लगा। दूर जंगल में जाने से रोज पतरौल से मुठभेड़ होती। कभी-कभी दरातियां भी छिन जातीं। खाली हाथ लौटना पड़ता।

गांव के लोग पटवारी के पास अपनी विपत सुनाने गये। पटवारी खुद लाचार था। चार-पांच गांवों के प्रधानों ने बिना गांव वालों की सलाह के ही 'कोई आपत्ति नहीं' लिखकर दे दिया था। ठेकेदार को तो लिखित में सबूत मिल चुका था और अब उसे कोई रोक भी कैसे सकता था। वह गलत-सही तरीके से खुदाई कराने में जुट गया। लोगों के उगाये हुए पेड़ों का नाश होने लगा।

मर्द रोजगार मिल जाने से खुश थे। औरतों की परेशानियां उनके लिए बेकार की चीज थी। उन्हें घर बैठे पैसा मिल रहा था। कभी-कभार ठेकेदार के आदमी दारू की बोतलें और सिगरेट के डिब्बे भी थमा देते।

कई सौ खच्चरों का काफिला भी इन गांवों में पहुंच गया। मुसीबतें और बढ़ने लगीं। खच्चरों ने खेतों को रौंदना शुरू कर दिया। फसलें भी चौपट होने लगीं। औरतों के साथ बंजारे बहुत बदतमीजी के साथ पेश आने लगे। अश्लील हरकतें करते।

पेड़ कटते जाते। उनकी जगह नये पेड़ नहीं लगाये जाते। गड्ढे बनते चले गये। कभी-कभी तो राह चलते लोगों पर ऊपर से पत्थर भी गिर जाते। खड़िया से लदे हुए खच्चरों का काफिला जब चलता तो संकरे रास्ते एक-एक घंटे से भी ज्यादा समय तो घिर जाते। सिर पर पानी के घड़े रखे हुए औरतें घंटे-घंटे भर मजबूरी में खड़ी रह जातीं। बच्चों की सुरक्षा के लिए भी खतरा बढ़ गया। पहले वे इधर-उधर घूमते थे, खेलते थे। अब अपने ही आंगन तक सिमट कर रह गये।

रात भर से मूसलाधार वर्षा हो रही थी। दिन काफी निकल गया। आसमान खुल गया था। लोग घरों से बाहर निकले और आश्चर्य में डूब कर रह गये। गर्मियों के इस मौसम में खेत सफेद पर्त से ढके हुए थे—बर्फ कैसे पड़ सकती है। तब कुछ औरतें अपनी दराती और कुदाली लेकर खेतों पर पहुंचीं। कुदाली मारी तो देखा कि यह बर्फ नहीं है। यह तो खड़िया मिट्टी है जो बहकर खेतों में पहुंच गयी है। सारी फसल चौपट हो चुकी थी।

कमलादेवी ने अपना माथा पीट लिया। उसने गांव की सारी औरतों को इकट्ठा किया। उसने कहा—"अगर यह खुदाई चलती रही तो हम कहीं के नहीं रहेंगे। आज हमारे खेत उजड़ गये हैं, कल हमारे मकान उजड़ेंगे।"

अब क्या हो? सबके सामने भयंकर समस्या थी। मर्द सब खामोश थे। औरतों की लड़ाई जैसे सिर्फ औरतों की ही लड़ाई थी। वे नहीं समझ रहे थे कि यह जीवन-मरण का प्रश्न है।

आखिर क्या किया जाये। तभी पनुली देवी को ख्याल आया कि कुछ ही मील की दूरी पर एक आश्रम है और वहां की बहनजी औरतों के भले के लिए काम कर रही हैं। पांच-छः औरतें उस आश्रम में पहुंचीं और बहन जी को सारी विपदा सुनायी।

बहनजी खुद उनके साथ गांव में पहुंचीं। गांव की हालत तो बहुत ही खराब थी। कारतूस लगा-लगाकर चट्टानें तोड़ी जा रही थीं। गांव के आस-पास का इलाका घने जंगलों के कटने से नंगा हो गया था। पानी के स्रोत दबते जा रहे थे।

बहनजी ने कोट गांव की औरतों को जिला दफ्तर ले जाने का फैसला किया। आस-पास की औरतों को भी इकट्ठा किया गया। औरतों के उत्साह को देखकर मर्द भी उनके साथ शामिल हो गये।

डेढ़ सौ से भी ज्यादा लोगों का यह जत्था जिला दफ्तर पहुंचा। पूरे बाजार में जुलूस निकाला गया। जुलूस को देखने के लिए लोगों की भीड़ पड़ी। बाद में जिले के कलक्टर के दफ्तर के बाहर प्रदर्शन किया गया।

खुदाई का काम कराने वाला ठेकेदार बहुत चालाक था। उसने कई लोगों के खिलाफ मुकदमा दर्ज कर दिया। ठेकेदार ने इन लोगों के खिलाफ आरोप लगाया कि ये सब दराती-कुल्हाड़ी लेकर उसको मारने के लिए आये थे।

मर्द इस मुकदमे से घबरा उठे। औरतों ने उन्हें उत्साह बंधाया। गांव-गांव जाकर चंदा किया और मुकदमा लड़ा गया। गांव वालों ने एस० डी० एम० की अदालत में सारी विनाश लीला की आंखों देखी गाथा कह सुनायी।

एस० डी० एम० ने कई विभागों के अफसरों को मौके पर जांच के लिए भेजा। अगली गवाही में सभी अधिकारी मौजूद थे। जंगल विभाग के डी० एफ० ओ० ने कहा—"जंगल से अंधा-धुंध पेड़ काटे गये हैं। छोटे-छोटे पेड़ों को भी नहीं छोड़ा गया है। बदले में नये पेड़ नहीं लगाये गये हैं। जंगल विभाग की बिना मंजूरी के ही पेड़ काटे गये हैं।"

जल विभाग के अधिकारी ने बताया—"खुदाई के काम से आस-पास के कई गांवों के पानी के स्रोतों के लिए संकट पैदा हो गया है। खुदाई इसी तरह चलती रही तो सारे स्रोत बंद हो जायेंगे।"

मामला आखिर कलक्टर के पास पहुंचा। सारे अफसरों की रिपोर्ट उनके पास पहुंच गयी। औरतों ने कलक्टर से अपील की कि वे एक बार खुद मौके का मुआयना कर लें।

तब एडीशनल कलक्टर गांव में पहुंचे। वे कागजी खानापूरी करके मामले की गंभीरता को अनदेखा करने की कोशिश में थे। औरतों ने उन्हें घेर लिया और सारी विपदा कह सुनायी। ठेकेदार के गुंडों द्वारा किये जा रहे हमलों की बात बतायी।

औरतों ने एडीशनल कलक्टर को अपने साथ ले जाकर जंगल दिखाया। पानी के स्रोत दिखाये। गांव आने वाले तमाम रास्तों की दुर्गति वे आते समय देख चुके थे। जिले में जाकर उन्होंने अपनी रपट में इस सारी दुर्दशा का हवाला दिया।

मुकदमे का फैसला ठेकेदार के खिलाफ गया। ठेकेदार को खुदाई का काम बंद कर देने का आदेश दिया गया। ठेकेदार ने दुबारा फिर ठेका पाने की बहुतेरी कोशिश की पर उसे सफलता नहीं मिल पायी।

गांव वालों ने राहत की सांस ली। अब सब मिलकर इस विनाश को विकास में बदलने में जुट गये। पेड़ फिर से उगाये गये। रास्ते ठीक किये गये और पानी के स्रोतों को दबने से बचाया गया।

फिर से गांव का स्वरूप बदल गया। अब वह सिलखड़ी की खुदाई से विकृत गांव नहीं रह गया, बल्कि एक नया गांव बन गया।

उसके हिस्से में

रास्ते में कई बार उसका गला भर आया। एक लंबी उम्र बीत गई पर ऐसा कभी नहीं हुआ। कई बार उसने आंसू पोंछे।

आधा किलोमीटर का फासला तय करने में उसे काफी वक्त लग गया और कोई वक्त होता तो शायद स्टेशन पहुंचने में दस मिनट से ज्यादा नहीं लगते। रास्ते पर पांव आगे बढ़ ही नहीं पा रहे थे। आंखों के सामने धुंधलका-सा छाने लगता। फिर भी स्टेशन तो पहुंचना ही था।

पहले ऐसा कभी नहीं हुआ, हालांकि जब भी गांव आता उसे लौटते हुए अजीब-सा लगता। वर्षों शहर में रहते हुए हो गए। फिर भी, जब भी गांव आता तो लौटने का उसका मन ही नहीं होता। लेकिन इस बार कुछ और ही बात थी, जो वह भीतर-ही-भीतर परेशान था। पहले एक लगाव होता पर आज तिक्तता थी।

वह पिताजी का पत्र पाकर जल्दी-जल्दी घर पहुंचा था। नए मकान का गृह-प्रवेश था। पिताजी ने पहले मुहूर्त टाल दिया था पर फिर अचानक उसके पहुंचने पर पूजा का कार्यक्रम बना दिया। टाल दिया होता तो शायद उसे इतनी घुटन न होती। पर पूजा के बाद से वह भीतर-ही भीतर घुटन का शिकार हो जाएगा, यह वह नहीं जानता था। अगर जानता होता तो गांव जाना ही टाल दिया होता।

भाई को अपनी ड्यूटी पर जाना था वह चला गया। भाई की पत्नी घर में ही रह गई। पिताजी ने नया मकान कई किलोमीटर की दूरी पर बनाया था। उन दोनों ने फैसला कर लिया था कि उनमें से पूजा में कोई नहीं जाएगा। भाई को नौकरी से कुछ घंटे की छुट्टी भी मिल सकती थी। लेकिन

उसने ऐसा नहीं किया। दोनों पति-पत्नी को इस बात का गुस्सा था कि उन्हें पिताजी ने पूछा नहीं। वे चाहते थे हर चीज उन्हें पूछकर ही की जाये।

उसके सोचने का सिलसिला टूटता है। ट्रेन चल पड़ी है। यह छोटा-सा कस्बा भी छूट गया है। उसकी आंखें नम हो जाती हैं। स्टीम इंजन है। कोयले के कण घुस गए हैं कहकर वह स्वयं ही पत्नी और बच्चों को खिड़की से न झांकने की सलाह देता है।

गाड़ी रफ्तार पकड़ती है। कोई छोटा-सा गांव नजदीक से आकर चला जाता है। उसकी टूटी हुई यादों का सिलसिला फिर जुड़ जाता है। बेहद गर्मी है। पूरे डिब्बे में वही अकेले हैं। लगता है यह पूरी जीवन-यात्रा भी इसी तरह अकेले ही कटेगी। कहीं कोई साथ देने वाला नहीं।

वह पत्नी-बच्चों के साथ पूजा में गया। माता-पिता उनसे पहले गांव पहुंच चुके थे।

स्वयं ही खाना बनाया व खाया। सारा सामान साथ ले गया था, सिवाय सब्जी के। नया मकान फार्म के बीच में बना था। फार्म में काम करने वालों के लिए वह नितांत अपरिचित था। उन सबके लिए वह पिताजी का नहीं भाई का फार्म था। पिताजी भी सब कुछ उससे पूछकर ही करते हैं। उसकी कहीं कोई गिनती नहीं। यहां तक कि मकान बनाने से पहले खबर भी नहीं दी। जब काफी कुछ बन चुका तो उसे खबर दी। इस बात का उसे कोई मलाल नहीं रहा। इन बातों को मामूली समझ कर हमेशा वह टालता जा रहा है।

फार्म में क्या कुछ पैदा होता है उसे वर्षों बाद भी इसका कुछ पता नहीं। हां, साल से कभी-कभार दो-चार सेर चावल भिखारियों की तरह उसे मिल जाते हैं। कभी वे भी नहीं। उसने इस बात को भी कभी गंभीरता से नहीं लिया। कोई अगर कुछ देना नहीं चाहे तो वह क्यों मांगे—उसका अपना विचार था।

आदमी भी कितना अमानवीय हो गया है—भाई को भी भाई के प्रति कोई अपनापन नहीं रह गया। दृष्टि भी कितनी जल्दी संकुचित हो जाती है।

भाई और उसकी पत्नी पूजा में नहीं गए। उसने इस बात को गंभीरता से नहीं लिया। पूजा को शायद वह भी गंभीरता से नहीं लेता—पर पिताजी का आदेश था। उनके आदेश की अवहेलना कर पाना उसके लिए हमेशा ही मुश्किल रहा है। शाम को पूजा के बाद वे लौटकर आए तो भाई और उसकी पत्नी ने प्रसाद भी नहीं लिया। उसको गुस्सा आने लगा। उसने किसी तरह अपने पर काबू किया। वह सोचने लगा कि पिताजी का मन रखने के लिए अगर प्रसाद ले लेते तो क्या बिगड़ जाता। दोनों ने जान-बूझकर पिताजी का अनादर किया, उनके सामने ही। ऐसा वह सोच भी नहीं सकता था। लेकिन, उसे आश्चर्य तो तब हुआ जब पिताजी ने इस सबके बावजूद उनसे कुछ नहीं कहा। उल्टा कहने लगे—"गलती मेरी है, मैंने इन लोगों से पूजा में चलने के लिए नहीं कहा।"

लगातार एक महीने से पिताजी उन लोगों से गृह-प्रवेश के बारे में बात कर रहे थे। पर आज स्वयं इस तरह की बातें करने लगे थे। वह सोचने लगा कि उसे ही हमेशा गलत समझा जाता रहा है। भाई की गलती के बावजूद उससे पिताजी कुछ नहीं कह रहे हैं। वह इतना ही कह देते—"प्रसाद क्यों नहीं लेते।" अगर वह डांटकर कहते तो शायद वे दोनों उनकी बात टालते नहीं।

वह चुपचाप वहां से उठकर बाहर निकल आया। उसका गला अवरुद्ध होने लगा था। उसे लगा कि वही गलत है। पूजा लोग सुख-शांति के लिए करते हैं लेकिन यहां तो अशांति होने लगी थी। ऐसी पूजा से क्या फायदा जहां मानसिक शांति ही खत्म हो जाए।

सुबह वह फार्म में आमों के पेड़ों के झुंड को देख रहा था। उसे उन पेड़ों से गहरी आत्मीयता हो आई थी। तब वह क्या जानता था कि ये पेड़ उसकी आत्मीयता के लिए नहीं हैं। ये उसके लिए किसी पराए फार्म के पेड़ हैं, जिन्हें वह सिर्फ निहार सकता है। परायी चीज भी क्या कभी अपनी हुई है? कभी नहीं। यह उसने वहां फार्म में सोचा नहीं था। अब उसे लग रहा था कि वह सब तो एक सपना था।

कोई छोटा स्टेशन आ गया था। इस लाइन पर छोटे स्टेशन बहुत हैं। गाड़ी हर पन्द्रह-बीस मिनट पर ठहर जाती है। गाड़ी फिर चलने लगी तो

उसकी यादों का सिलसिला फिर जुड़ने लगा ।

किसी से भाई की पत्नी ने कहा था—"गृह-प्रवेश पर हम बड़ा समारोह करेंगे । पूरे गांव वालों को बुलाएंगे ।" लेकिन वह नहीं जानता था कि उन लोगों का आना उन्हें इस तरह चुभेगा । वह, पत्नी और बच्चे पहली बार एक साथ फार्म में गए थे । उनका एक साथ जाना ही भाई और उसकी पत्नी के लिए कष्टदायक हो गया । अनाज, सब्जी, दूध सालभर उन्हें उसी फार्म से मिलता है और वे एक दिन वहां गए तो···।

भाई ने अपनी सफाई में कहा था—"वहां बिजली-पानी नहीं था । बच्चे बेकार में परेशान हो जाते ।"

मतलब कि परेशानी उनके लिए होती । जो वह सपरिवार गया उसके लिए नहीं । भाई इतना तो कर सकता था कि दो-चार घंटे, पहले छुट्टी लेकर फार्म पर आ जाता जबकि दफ्तर फार्म के नजदीक ही है । उसकी पत्नी और वह अक्सर फार्म पर जाते रहते हैं । लेकिन, जब वे गये तो तब उनके लिए बिजली-पानी की परेशानी हो गई ।

वह सोचकर आया था—दस-बारह दिन कम-से-कम गांव में रहेगा । घूमेगा, आराम करेगा । पर इस पूजा ने मन की सारी शांति भंग कर दी । उसने दूसरे दिन ही वापस लौटने का फैसला कर लिया । यह फैसला उसे कड़े मन लेना पड़ा । वह माता-पिता का अनादर नहीं करना चाहता था, उनका दिल दुखाना नहीं चाहता था । वह यह भी भूल जाता है कि उसके बजाय माता-पिता उनका ही अधिक पक्ष लेते हैं । उसके लिए किसी के पास कुछ नहीं । प्यार के दो बोल भी नहीं ।

उसकी आंखें फिर नम हो आईं । वह सहज होने की कोशिश करने लगा पर सहज नहीं हो पाया ।

उसने पिताजी को बता दिया कि वह बच्चों को लेकर कल ही वापस जा रहा है । यहां रहकर करना भी क्या है । जहां प्यार न हो, आदर न हो बल्कि उल्टा यह महसूस होता रहे कि हम इनको लूट के ले जा रहे हैं, वहां रहने से कोई फायदा नहीं । फार्म और मकान इन्हें मुबारक हों । इनको शायद गलतफहमी हो गई है कि हम इनका हक छीनकर ले जाएंगे ।

सब कुछ पिताजी की मेहनत से बना था—फार्म भी, मकान भी । फिर

भी भाई और उसकी पत्नी के लिए वह अपना ही था। उसका कहीं कोई अधिकार था ही नहीं। वे बिल्कुल यही समझते थे। वह उनके अधिकार को चुनौती किस अधिकार से देता—वह उन सबके लिए पराया था। वे पराया ही समझते थे।

पिताजी ने इसके बाद भी भाई और उसकी पत्नी को कुछ नहीं कहा। मां भी सामने ही बैठी थी। मां भी उल्टा उससे कहने लगी—"तुम लोगों को क्या हो गया है?" उसने तब स्वयं मन-ही-मन उत्तर दिया था—"दिमाग खराब हो गया है।"

फिर से कोई स्टेशन आ गया। बच्चों को भूख लग आई थी। उनके लिए वह आलू-पूरी ले आया। उसको भूख थी ही नहीं। सुबह से कुछ खाया भी नहीं था। फिर भी कुछ खाने को मन नहीं था। इस सारे मामले से वह भी कम दुखी न थी। उससे कहीं ज्यादा ही दुखी थी। उसने उसे कई बार समझाने की कोशिश की कि भूल जाओ उस सबको। ऐसा समझो कि कुछ हुआ ही नहीं। पर वह स्वयं को कैसे बहका सकता था। स्वयं को आदमी धोखा भी तो नहीं दे सकता।

पीने के लिए पानी लेने वह नीचे उतरा। एक चक्कर प्लेटफार्म का लगाकर पानी लेकर वह लौट आया।

गाड़ी में अब कई और सवारियां आकर बैठ गई थीं। पैसेंजर गाड़ी की अपनी रफ्तार थी। छोटी लाइन की गाड़ी की यही तो रफ्तार होती है। समय जब बहुत हो तो ऐसी ही गाड़ी में बैठना चाहिए। इसीलिए वह बस को छोड़कर इस गाड़ी में बैठा था। बच्चे अपने में मस्त थे।

गाड़ी फिर ठहर गई। उसके सोचने का सिलसिला फिर टूट गया। डिब्बा फिर खाली हो गया। कुछ और सवारियां चढ़ीं।

गाड़ी चल पड़ी। एक सहयात्री उसके सामने की सीट पर आकर बैठ गया। उनके पास काफी सामान था। सहज होते हुए उसने पूछा—"काफी सामान ले जा रहे हैं।"

यहीं अपना गांव है। मैं शहर में नौकरी करता हूं। यहां भाई है। साल में दो-तीन चक्कर लग जाते हैं। मना करता हूं फिर भी भाई हर बार गेहूं, चावल बांध ही देता है। कहता है, शहर में बहुत मिल जाएगा, पर अपने

खेत का अनाज तो नहीं होगा। प्याज, लहसुन, दालें तक यहीं से मिल जाती हैं।

मन-ही-मन उसने कहा—"बड़े भाग्यवान हो।" लेकिन फिर उससे कहा—"अपनापन बना रहे यह बहुत बड़ी बात है।"

हां बाबू जी, बड़ा अपनापन है हममें। छोटा भाई बहुत मानता है। पिताजी भी बड़ा ख्याल रखते हैं। कहते हैं किसी चीज की चिंता मत किया कर। साल में दो-तीन चक्कर भाई और पिताजी भी शहर के लगा लेते हैं।

वह उसकी तरफ देखता ही रह गया। उसके पास कहने के लिए कुछ नहीं था। एक वह था जो गांव से अपने साथ खुशी लेकर लौट रहा था और एक वह था जिसे कड़ुआहट मिली।

एक और कबीर

आप यकीन नहीं मानेंगे । पर यह सच है । मेरा पुनर्जन्म हुआ है । वैसे पुनर्जन्म में मेरा कतई विश्वास नहीं ।

हुआ यह कि अपने एक पड़ोसी के शवदाह के लिए हरिद्वार गया था । पड़ोस का मामला था । फिर बुजुर्ग थे । हालांकि वह बुजुर्ग कुछ अजीब ही किस्म के थे । कई बार वे अपने घर में कहते थे—जब भी मरूंगा, कइयों को साथ ले जाऊंगा । उनकी बातों को सुनकर उनके अपने ही लड़के उनकी जमकर खिचाई करते थे ।

हां तो, उनके ही शवदाह से वापस लौट रहे थे । उनके अपने लड़के उस मैटाडोर में नहीं बैठे, जिसमें शव रखा था । हम चार-पांच पड़ोसी उसमें बैठ गए । बाकी दूसरी गाड़ियों में सवार थे । वापस भी हम उसी मैटाडोर में आए । रास्ते में मैटाडोर सड़क पर भागती हुई एक भैंस से टकराकर उलट गई । भैंस ने तभी दम तोड़ दिया । उसके बाद मुझे होश नहीं रहा । जब होश आया तो मैं अपने इसी शहर के अस्पताल में था ।

बाद में किसी ने बताया कि मैटाडोर में सवार लोगों में एक की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई । मैं बुरी तरह जख्मी हो गया था । चार और लोग भी जख्मी हुए, पर मामूली । लोग बताते हैं कि मेरे साथी मृतक के साथ ही मुझे भी मृत समझकर अस्पताल के मुर्दाघर में डाल दिया गया । कई घंटे बीत गए । मृतक के परिवार वाले बिना पोस्टमार्टम कराए ही शव लाना चाहते थे । बाद में मामला तय हो गया तो मेरी भी जांच डॉक्टरों ने की । एक इंजेक्शन लगाने पर मेरे शरीर में कुछ हरकत हुई, उन्हें कुछ गर्मी-सी महसूस हुई । उन्होंने फौरन मुझे अस्पताल भेज दिया । वहां दो दिन पड़ा

रहा। होश नहीं आया। घर वाले वहां पहुंचे। किसी तरह अपने शहर ले आए।

यह अपना शहर है न, बड़ा बेदिल शहर है। यहां लोगों में इंसानियत नाम की कोई चीज है नहीं। पराए शहर में तो डॉक्टरों ने मुझे मुर्दाघर से अस्पताल पहुंचा दिया। यहां अपने शहर में मुझे अस्पताल से श्मशान पहुंचाने की पूरी कोशिश हुई। दो घंटे अपने इसी शहर के अस्पताल में लावारिस-सा पड़ा रहा। मेरा बेटा इधर-उधर बदहवास होकर दौड़ता रहा, पर उसकी किसी ने नहीं सुनी।

आखिर दुख में बेहाल मेरा बेटा सबसे बड़े अधिकारी के घर गया। वे नहीं थे। उनकी पत्नी मिली। मेरे बेटे ने सब-कुछ उन्हें बताया। भला हो उस ममतामयी का। अपना दुख सुनाकर बेटा लौट आया। तभी मेडिकल सुपरिटेंडेंट वहां पहुंच गए। मुझे अस्पताल में तब जाकर दाखिला मिला। डॉक्टरों में अच्छी तरह इलाज किया। अगर वह ममतामयी न होती, मेडिकल सुपरिटेंडेंट को उसने फोन न किया होता तो शायद मैं आज जिंदा न होता।

पूरे तीन महीने अस्पताल में पड़ा रहा। चेहरा टेढ़ा हो गया था। हाथ-पांव काम नहीं कर रहे थे। आज तो आप मुझे अच्छी हालत में देख रहे हैं। अब तो बैसाखी के सहारे चल भी लेता हूं, हालांकि आपको अभी भी मैं काफी अस्वस्थ लग रहा होऊंगा। पर अब मैं बहुत अच्छी हालत में हूं। पहले से कहीं बेहतर।

परिवार के आधा दर्जन सदस्यों की जिम्मेदारी मुझ पर ही थी। मेरे अस्पताल में रहने के दौरान बड़े बेटे की नौकरी लग गई। पूरे परिवार की जिम्मेदारी अब उसके कंधों पर है। मैं तो पूरी तरह से लाचार हूं। भागदौड़ हो नहीं सकती।

हां, बेटे की नौकरी लगना भी एक चमत्कार ही है। उसी तरह का चमत्कार, जैसे मैं मुर्दाघर में कई घंटे पड़ा रहकर भी जीवित हो गया!

हां, तो बात हो रही थी मेरे दुर्घटनाग्रस्त होने की! उस दुर्घटना के करीब दो महीने या शायद ढाई महीने पहले की बात है। मेरा काम तो

आपको पता ही है हमेशा भागादौड़ी का ही रहा है। मेरे एक मित्र हैं, वे तब बीमार थे। सरकारी अस्पताल में उन्हें मैंने ही दाखिल कराया। वहां उनका अच्छा इलाज हुआ। पहली बार उन्हें सरकारी अस्पताल पर भरोसा हुआ। एक दिन उनसे मिलने अस्पताल गया। बातों-बातों में उन्होंने बताया कि उनके एक रिश्तेदार की लड़की गम्भीर रूप से बीमार है। किसी नर्सिंग-होम में हजारों रुपए फूंक चुके हैं, पर अच्छी नहीं हो रही है। उन्होंने किसी तरह से लड़की को उस अस्पताल में ही दाखिल करा देने का अनुरोध किया।

इतना बड़ा शहर! जब तक मकान का सही पता न हो, पड़ोस में भी मालूम नहीं हो सकता। मेरे पास उक्त सज्जन का पता ही नहीं था, सिर्फ उनके मोहल्ले का ही पता था। तीन घंटे तक उस मोहल्ले में चक्कर काटता रहा। अचानक एक परिचित मिल गए। वे उन सज्जन को जानते थे, सो वे उनके घर पहुंचा आए। घर जाकर पता चला कि लड़की अभी नर्सिंग-होम में ही है।

नर्सिंग-होम पहुंचकर उन सज्जन से मुलाकात हुई। मित्र का हवाला दिया। फिर जबर्दस्ती नर्सिंग-होम से लड़की की छुट्टी कराई और उसी सरकारी अस्पताल में ले गया। डॉक्टरों ने जांच की। कुछ देर में लड़की का ऑपरेशन कर दिया। लड़की उसके बाद कई घंटे तक होश में नहीं आई। उसके मां-बाप मुझ पर बिगड़े। उल्टा-सीधा कहने लगे। यहां तक कहा कि मैंने उनकी लड़की को जबर्दस्ती अस्पताल में लाकर मार दिया। मुझे काटो तो खून नहीं। मेरे पास कुछ कहने के लिए था भी नहीं। मैं डॉक्टर के पास भागा-भागा गया। उन्होंने कहा, 'घबराने की कोई बात नहीं, लड़की ठीक हो जाएगी।'

मुझे भरोसा हो आया।

दूसरे दिन लड़की होश में आ गई।

लड़की—सुमन नाम था उसका।

बिलकुल ठीक हो गई। मुझसे कहने लगी, "आपने मुझे पुनर्जन्म दिया है। आप यहां अस्पताल में नहीं लाते तो मैं शायद ठीक ही नहीं होती।"

मैंने उत्तर दिया, "तुम मेरी बेटी हो ! मैंने जो कुछ भी किया है अपनी बेटी के लिए !"

उसे मैंने अपने घर खाने पर बुलाया। जिस दिन उसने मेरे घर आना था, उसी सुबह मुझे शवदाह के लिए हरिद्वार जाना पड़ा। शाम को मैं घर नहीं पहुंचा, क्योंकि दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। वह घर नियत समय पर पहुंची पर मैं नहीं था। तब तक मेरी दुर्घटना की खबर भी घर नहीं पहुंची थी।

सुमन फिर दूसरे दिन घर पहुंची। मेरी दुर्घटना की खबर पहुंच चुकी थी। वह फिर तीसरे दिन आई। मैं अस्पताल में पहुंच चुका था। उसके बाद तो मेरी वह बिटिया सुमन कई बार अस्पताल मुझे देखने पहुंची। उसके मां-बाप भी पहुंचे।

सुमन को मेरे घर की हालत मालूम हो चली थी। एक मैं कमाने वाला और वह भी महीनों से अपाहिज ! घर का खर्च किसी तरह से चल रहा था। सुमन चाहती थी कि हमारी मदद करे। लेकिन मैं भला उससे मदद कैसे ले सकता था ? फिर जिसे मैं बेटी मान चुका था ! उसके पिता काफी संपन्न हैं, पैसे की कोई कमी नहीं। वह आर्थिक मदद करना चाहती थी, लेकिन मैं नहीं माना। मैंने उसका इलाज कराकर कोई अहसान थोड़े ही किया था। वह मेरा कर्तव्य था। क्या मैं अपने कर्तव्य को बेच सकता हूं ? आप ही बताइए ?

बहरहाल उसने अपने पिता से कुछ कहा। क्या कहा, यह मुझे मालूम नहीं। पर उसने मेरे सामने सिर्फ इतना ही कहा, "डैडी, अगर आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं अंकल के घर चली जाऊंगी।"

फिर मुझसे कहने लगी, "क्यों अंकल, रहने देंगे न अपने घर में ?"

मैंने कहा, "हां-हां, क्यों नहीं बेटी ? मुझे तो पली-पलाई और पढ़ी-लिखी बेटी मिल जाएगी। फिर तुम्हारे आने से, तुम्हारे छोटे भाई-बहनों का भविष्य भी सुधर जाएगा।'

मैं अस्पताल में ही था। एक दिन वह दस हजार रुपए लाकर मेरे सिरहाने रखने लगी। मैंने कहा, "बेटी, यह क्या ?"

"कुछ नहीं अंकल ! छोटे भाई की नौकरी डैडी ने अपनी फैक्टरी में लगवा दी है । यह भाई के नाम पर एडवांस कर्ज के रूप में है । हर महीने बिना ब्याज के उसकी तनख्वाह में से कटता रहेगा ।"

मेरे पास उसकी बात का कोई जवाब नहीं था । उसने मुझे पराजित कर दिया था । दूसरे दिन ही बेटे को रजिस्टर्ड डाक से नियुक्ति-पत्र मिल गया । अब यह नौकरी कर रहा है । वही घर का खर्च चला रहा है । अपनी बिटिया के अहसान का बदला, मैं कभी चुका नहीं सकता हूं !

सिंह साहब से काफी देर तक बात होती रही । उनसे एक-डेढ़ साल बाद मुलाकात हो रही थी । अपनी दुर्घटना के बारे में उन्होंने अस्पताल से घर आकर मुझे कई बार खबर भिजवाई । अपनी व्यस्तता के कारण उनसे मिलने नहीं जा पाया । एक दिन उनके घर पहुंचा । अपने घर के बाहर चारपाई पर लेटे हुए थे । इससे पहले तक तो मैं यही समझ रहा था कि मामूली-सा एक्सीडेंट हुआ होगा, लेकिन जब देखा तो कलेजा मुंह को आ गया । अच्छा-खासा उनका डीलडौल था लेकिन, कितने कृशकाय हो गए थे !

सिंह साहब से कई वर्ष पहले परिचय हुआ था । तब वे रेहड़ी-पटरी वालों को बसाने की मांग को लेकर भूख हड़ताल पर बैठे थे । तब वे अपने इलाके से स्थानीय पालिका के सदस्य भी थे । जुल्म और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने में वे हमेशा आगे रहते हैं ।

आज भी उनके पास किराए का वही एक छोटा-सा कमरा है । वह कमरा उन्होंने तब लिया था, जब वे मिल में नौकरी करते थे । नौकरी छोड़ दी, पर कमरा नहीं छोड़ा ।

आज वही सिंह साहब बड़ी दयनीय हालत में पड़े हुए थे । किसी जमाने में उनके जो साथी पैदल चलते थे, आज स्कूटर-कारों में घूम रहे हैं । आलीशान मकानों में पहुंच गए । पर सिंह साहब को इसका कोई अफसोस नहीं । उन्हें अफसोस तो सिर्फ इस बात का है कि इस हालत में लोगों की मदद कैसे कर पाएंगे ? वे चाह रहे थे कि कैसे जल्दी ठीक होकर जरूरत-मंदों की मदद करें ! अपने घर की उन्हें कोई चिंता नहीं थी ।

फिर उनसे महीनों तक मुलाकात नहीं हो पाई। एक दिन स्वयं घर आ गए। अब वे काफी स्वस्थ दिखाई दे रहे थे।

"अब तो आप काफी ठीक हो गए हैं! कर क्या रहे हैं इन दिनों?"

"बस, वही समाज-सेवा। और कर भी क्या सकता हूं? अपना तो बस एक ही नारा है—जो घर फूके आपना, चले हमारे साथ!

अपने दायरे में कैद

सुबह नरेन जरा जल्दी उठ गया। बच्चे बिस्तर पर ही थे। नीता भी सोई हुई थी। नौकर हमेशा की तरह बेड-टी देकर अपने काम में लग गया।

बेड-टी लेने के बाद नरेन ने दाढ़ी बनाई और नहा-धोकर तैयार हो गया। नाश्ते के लिए उसने मना कर दिया। नौकर घर के काम में लगा हुआ था।

चलने से पहले वह बेडरूम में पहुंचा तो बच्चे अभी तक सोये पड़े थे। हां, नीता जग गई थी।

"नीतू, मैं जरा काम से जा रहा हूं। कम्पनी के डायरेक्टर आये हैं, उनसे मिलना है। शाम तक लौटूंगा। लंच भी उधर ही है।"

"हर छुट्टी तुम्हारे डायरेक्टर बर्बाद कर देते हैं। आज पिक्चर देखने का प्रोग्राम था। रात को उधर ही किसी अच्छे रेस्तरां में डिनर करते। तुमने सारा प्लान चौपट कर दिया। ठीक है। मैं अपना प्लान तो तुम्हारे लिए चौपट करने से रही।"

नरेन नीता की बात सुनकर चुपचाप बाहर निकल गया—वह माली-वाड़े के पुराने कटरे के भीतर स्कूटर को हाथ से घसीटता ले गया।

एक अंधेरी गली में पहुंचकर उसने स्कूटर खड़ा किया और एकदम सपाट जीने पर रस्सी से झूलता ऊपर जा पहुंचा। मकान में हवा और रोशनी के घुसने का रास्ता न था। पहले तो इस जीने पर वह आंखें मूंद-कर चढ़-उतर जाता था। पिछले कई वर्षों से इस अंधेरे जीने में चढ़ने-उतरने का अभ्यास छूट चुका था। बीस-बाईस वर्ष जिस मकान और गली में गुजरे अब वहीं वह चुपके से परायों की तरह घूमता था।

वह जब गली में घुसता तो सबसे बचने का प्रयास करता। अजीब अपराध-भाव से ग्रस्त रहता था। जाने क्यों पड़ोसियों के सामने पड़ने से वह कतराने की कोशिश करता। पड़ोसी कभी कोई मिल भी जाते तो वह दुआ-सलाम करके जल्दी से खिसक जाता।

पड़ोसी चाचा तो बस यही पूछते—"नरेन, अकेले आये हो? बीवी-बच्चों को साथ नहीं लाये! बूढ़े मां-बाप की कभी-कभी खोज-खबर ले लिया करो बेटा!"

नरेन उनसे कुछ कहने की बजाय सिर्फ सिर हिलाकर रह जाता। अपने मां-बाप की वह बड़ी इज्जत करता था। आज भी पिता के सामने वह बहुत कम बोलता था। मां से तो वह लाड़ कर लेता। मां-बाप के सामने कभी वह नीता का जिक्र नहीं करता। वे भी उससे कभी ज्यादा नीता के बारे में नहीं पूछते थे।

नीता को पता था नरेन अपने मां-बाप से मिलने जाता है। वह कई बार खीझती भी। यों उसके सामने वह स्वयं ही मां-बाप की चर्चा करने से डरता था। पता नहीं कब तूफान खड़ा कर दे! उसे बिना बताये ही चुपचाप मां से मिलने चला जाता। मां उससे मिलकर ऐसा व्यवहार करती मानो आज भी नरेन छोटा हो। नीता के सामने न नरेन कुछ बोल पाता और न मां-बाप ही। बस, मात्र औपचारिकता पूरी कर लेते थे।

नीता के साथ रहते नरेन को अपने और अपने मां-बाप के बीच दूरी महसूस होती। इसलिए वह उसके साथ कसी मां-बाप से मिलने नहीं आता। नीता खुद भी उनसे मिलने आने से कतराती थी।

उसने नीता से प्रेम विवाह क्या किया सब-कुछ गंवा दिया। चेहरे की हंसी भी गायब हो गई। मां-बाप और भाई-बहन का वर्षों का साथ ही झटके में छूट गया। नीता के साथ महारानी बाग के शानदार फ्लैट में रह-कर उसे लगता कि किसी बियाबान जंगल में रह रहा है। कभी-कभी उसे दहशत होने लगती। उसे लगता, इतनी बड़ी कोठी में जैसे नजरबन्द कर दिया गया हो।

जीना चढ़कर ऊपर पहुंचा। मां भीतर रसोई में थीं और पिताजी

कमरे में बैठे अखबार पढ़ने में मशगूल थे। जतिन और मीना उसे कहीं दिखाई नहीं दिए। उसने जाकर पिताजी के पांव छुए और फिर सीधा रसोई में पहुंच गया।

उसने पीछे जाकर मां की आंखें बन्द कर लीं। मां ने चौंककर पीछे देखा।

"कौन ?"

आवाज बदलकर नरेन ने कहा—"बताओ कौन हूं ?"

"नरेन है। और कौन ?"

उसने झट से हाथ हटा लिये और मां के पैर छू लिये।

"नरेन बेटा, बहुत दिनों बाद फुर्सत मिली !"

नरेन मर्माहत हो उठा। फिर भी चुप रहा। उसके पास कोई उत्तर न था। मां का लाड़ला बेटा रहा था। नीता से शादी के बाद सब कुछ भूल गया।

नीता से शादी उसके जीवन की बहुत बड़ी दुर्घटना थी, जिसे वह बहुत बाद में समझ पाया। एक ऐसा जख्म उसके जीवन में हो गया, जो अब नासूर बन चुका था। मां-बाप से हफ्ते-दस दिन में मिलने चला जाता। इस पर नीता हमेशा भड़क जाती। उसे यह कतई पसन्द न था कि नरेन अपने मामूली हैसियत वाले मां-बाप से ज्यादा मिले-जुले। उसके और नरेन के बीच कई बार तकरार भी हो चुकी थी, इसी बात को लेकर।

नीता एक-दो बार नरेन के साथ आई, पर गाड़ी में घण्टाघर के पास पार्क करके बैठी रही। नरेन को जल्दी लौटने की ताकीद कर दी, जैसे नरेन मां-बाप से नहीं, बल्कि किसी कैदखाने में बन्द रिश्तेदार से मिलने जा रहा हो। तब से नरेन बिना नीता को बताये ही चला आता और निश्चिन्त भाव से दिन बिताता। उसे अब भी यही अपना घर लगता। महारानी बाग वाले फ्लैट में रहते हुए उसे लगता कि वह नीता के साथ उसका पेइंग-गैस्ट बनकर रह रहा है।

"क्या सोच रहा है नरेन ?"

नरेन की तंद्रा भंग हुई। उसने मां की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

"बहू और बच्चों को क्यों नहीं लाया रे? महीनों से नहीं देखा।"

"कुछ नहीं मां। कोई खास बात नहीं। बच्चे अभी सोये थे। मैं जल्दी उठकर चला आया। तुम्हारे हाथ के पकौड़े खाये अर्सा हो गया था। सोचा···"

"चलो, पकौड़ों के बहाने याद तो आई मां की। तू तो मां-बाप के लिए भी पराया हो गया। हमारे जमाने में तो बेटियां पराया धन हुआ करती थीं, पर अब तो बेटे पराये होने लगे हैं। जमाने-जमाने की बात है बेटा। सब जमाने का दोष है।"

मां ने रैक से बेसन और आलू-प्याज निकाले और पकौड़े तलने लगीं। नरेन वहीं कुर्सी खिसकाकर बैठ गया।

बाहर कमरे में बैठे पिताजी अखबार पढ़ तो रहे थे, पर नरेन के आने के बाद उनका मन अखबार पढ़ने में नहीं लगा। उनके सामने छोटे-से नरेन की तस्वीर नाच उठी। उन्होंने नरेन को लेकर क्या-क्या सपने नहीं देखे थे। सबसे बड़ा बेटा था उनका।

पत्नी कई बार कहती—अपने नरेन के लिए चांद-सी बहू लाऊंगी?

बेटे को पढ़ाया-लिखाया। कई जगह से रिश्ते आने लगे। मां चाहती थीं, जल्दी शादी कर दी जाये। पिता चाहते थे, कहीं काम से लग जाए तब शादी करें। दो-तीन जगह बात भी चल रही थी। नरेन इंजीनियरिंग कर रहा था। भविष्य अच्छा था।

इंजीनियरिंग का रिजल्ट आते ही नरेन एक अच्छी कम्पनी में लग गया। माता-पिता अब उसके लिए अच्छी लड़की की तलाश में थे। दहेज का उन्हें कोई लोभ न था। चाहते थे किसी अच्छे परिवार की लड़की हो—सुसंस्कृत, सुशील। रिश्ते बहुत आ रहे थे। लोग आते-जाते पूछने लगते, 'कब कर रहे हो नरेन की शादी?'

पिता ने सोचा—जल्दी ही कहीं बात पक्की कर दी जाए तो अच्छा है। वह जब तक कोई फैसला करते, तब तक नरेन ने खुद ही अपना फैसला

सुना दिया। उन पर वज्रपात हो गया। मां के सारे सपने मिट्टी में मिल गए। पिता ने ही उसे समझाया था—उसकी खुशी में ही हमारी खुशी है।

नरेन आता तो घर में खुशी की लहर दौड़ जाती। पिता पहले से ही कम बोलते थे, पर अब नरेन कभी-कभार आता तो उससे बतिया लेते।

"क्यों, क्या घुट रही है मां-बेटे में ?" कहते-कहते पिताजी भी रसोई में पहुंच गए।

"अच्छा, तो बेटे की सेवा हो रही है। अरे भई, कभी हमें भी पूछ लिया कर। बेटे की सेवा के लिए तो अब बहू भी है। पकौड़े हमें नहीं मिलेंगे क्या ?"

नरेन पिताजी के व्यंग्य को समझ गया। उसने फीकी मुस्कान के साथ पिताजी की ओर देखा। मां-बाप ने उसके बेमेल विवाह के खिलाफ कभी एक शब्द भी नहीं कहा था। उसने नीता से विवाह करना चाहा तो इजाजत दे दी और तब उन्होंने कहा था—तुम अब बच्चे नहीं हो। स्वयं ही निर्णय लेने में समर्थ हो। अपना अच्छा-बुरा अच्छी तरह सोच सकते हो। यह जिन्दगी का सवाल है, तुम्हें ही फैसला लेना है। पर फैसला लेने से पहले यह सोच लेना कि कहीं जिन्दगी में फिर कभी पछताना न पड़े।

नीता से विवाह के बाद वह अपने परिवार, रिश्तेदारों और दोस्तों से कटता चला गया। नीता बड़े परिवार की थी। उसके पिता कभी अंग्रेजों की जी-हुजूरी करते थे और बदले में रायबहादुर का खिताब उन्हें मिल गया था। कई कोठियां थीं उनकी। वक्त बदला। देश आजाद हुआ तो वे ऊंचे दायरे में अपनी पहुंच के बल पर 'पद्मश्री' का खिताब बटोरने में भी कामयाब हो गये। ऊंचे ओहदों तक उनकी पहुंच थी। इसका वह खासा फायदा भी उठाते थे। नीता उनकी आधा दर्जन सन्तानों में सबसे छोटी बेटी थी। सीनियर कैम्ब्रिज के बाद इंगलैंड से बिजनेस मैनेजमेंट की डिग्री लेकर लौटी थी। पैसे की उनके लिए कोई कमी नहीं थी।

नरेन जिस फर्म में इंजीनियर था, उसी में वह एक्जीक्यूटिव थी। दोनों एक-दूसरे के करीब आ गए। नरेन उसके पारिवारिक दायरे से अपरिचित था। उसे पहली ही नजर में नीता भा गई थी, पर पहल नीता ने ही की

थी। वह उसके मोहजाल में फंसता चला गया।

उसने बाहर से ही नीता को देखा। महंगे रेस्तरां-क्लबों में उनका प्यार परवान चढ़ा और दोनों ने शादी का फैसला कर लिया। नीता के मम्मी-डैडी को कोई ऐतराज न था। ऐतराज तो नरेन के मां-बाप को भी न था, पर उन्हें डर था कि वह जिस वातावरण में पली-बढ़ी है, उसमें नरेन आसानी मे घुल-मिल नहीं पायेगा। पर नरेन से कुछ कह नहीं पाए। कहीं वह यह न सोचे कि मां-बाप नहीं चाहते कि वह नीता से शादी करे।

नरेन और नीता के दायरे अलग-अलग थे। दोनों ने शादी कर ली तो दोनों के परस्पर विरोधी वर्गों में टकराव होने लगा। नीता तो शादी के दो दिन बाद ही कटरे की जिन्दगी से उकता गई थी। खुले आकाश में उड़ने वाली चिड़िया पिंजरे में कैद हो गई थी।

"देखो नरेन! इस भुतहा दड़बे में तो मेरी सांस घुटने लगी है। मैं तो एक साल भी यहां नहीं रह सकती। यहां रहना हमारी स्टेटस के खिलाफ है। महारानी बाग वाली कॉटेज में चले चलो। वहां कम-से-कम अपने स्तर से रह तो लेंगे।"

नरेन को पहला झटका लगा था। उसके सामने एक ओर मां-बाप थे, दूसरी ओर पत्नी। नीता की बात टालने की उसमें हिम्मत न थी। उसने अपना निर्णय अपने पिता को सुना दिया।

वड़ी गम्भीरता से बोले—"नरेन, जब शादी तुमने नीता से की है तो उसके कहे अनुसार चलो। नहीं चलोगे तो जिन्दगी कड़वाहट से भर जायेगी। तुम दोनों को जिन्दगी-भर साथ निभाना है। हमारा क्या है। पीले पत्ते हैं, पता नहीं कब गिर जाएं। सीमा है—उसकी शादी हो जाए तो हमारी जिम्मेदारी पूरी हो जाये। रहा जतिन—वह भी अपने पैरों पर खड़ा हो गया है। नौकरी करे या क्लीनिक खोले—यह फैसला करना उसका काम है। हमसे जितना हो सका हमने किया।"

तीन-चार दिन के भीतर नरेन महारानी बाग की कॉटेज में पहुंच गया। नीता तो दो दिन बाद ही अपने मम्मी-डैडी के पास चली गई थी। वहीं से महारानी बाग चली आई। उसमें नवविवाहिता-जैसी सुकुमारता न थी।

वह कभी किसी का लिहाज करना भी नहीं जानती थी।

नीता ने जब नरेन को मां-बाप से अलग होने के लिए कहा तो उसे बड़ा गुस्सा आया था। फिर भी उसने सब्र से काम लिया। गुस्सा पी लिया। नरेन के सामने बड़ी द्विविधा की स्थिति थी। एक ओर नव-विवाहिता पत्नी, दूसरी ओर मां-बाप थे—भाई-बहन थे। इनमें से एक का चुनाव करना था। मां-बाप ने स्वयं ही रास्ता साफ कर दिया था। दूसरी बार नरेन मन-ही-मन अपने मां-बाप के सामने नतमस्तक हो गया।

मां-बाप ने उसकी खुशी के खातिर अपनी सारी इच्छाओं-आकांक्षाओं की होली जला दी थी। लेकिन उससे एक शब्द भी कभी नहीं कहा। वे नहीं चाहते थे कि नरेन के मन में कभी भी यह विचार आए कि उसके मां-बाप ने उसके साथ ज्यादती की है। वे अपने स्वार्थ के लिए नरेन के सपनों का नला नहीं घोंटना चाहते थे।

नरेन अपने मां-बाप के आगे पराजित हो गया। उसकी इच्छाओं के आगे कोई अंकुश न लगाकर उन्होंने अपने सारे अरमान समाप्त कर दिए थे। कभी भी उससे कोई शिकायत नहीं की थी।

नरेन को लगता—नीता से शादी करके वह जीती बाजी हार गया है। नीता ने ही बाजी जीती। अब तो बस वह शतरंज का मोहरा बनकर रह गया है। नीता से उसका मात्र इतना ही नाता रह गया था कि रात को उसके साथ रहता। छुट्टी के दिन भी किसी-न-किसी बहाने घर से निकल जाता। नीता के साथ रहकर अब उसे घुटन-सी महसूस होती। बच्चे भी उसकी अपेक्षा नीता को ही ज्यादा चाहते। न जाने क्यों उसे कभी-कभी लगता कि नीता उसके जीवन में न आती तो उसका भी एक दायरा होता। उस दायरे में मां-बाप होते, पत्नी होती, बच्चे होते, मित्र होते।

नरेन जिस कोठी में नीता के साथ रह रहा था, वह नीता के ही नाम थी। वहां सारी सुख-सुविधाएं आने से पहले ही मौजूद थीं। वहां पहुंचने के बाद तो नीता ने साफ-साफ कह दिया—"नरेन, हमें अपनी हैसियत का ध्यान रखना है। तुम्हारे मां-बाप के पास मैं जा नहीं सकती, क्योंकि उनका

दर्जा बहुत छोटा है। वे हमारे समाज में फिट नहीं हो सकते। उनसे ज्यादा अच्छी तरह तो हमारे नौकर रहते हैं।"

"लेकिन, नीतू डार्लिंग, मेरे तो मां-बाप हैं वे। उनके प्रति मेरा भी तो कुछ कर्त्तव्य है। इस बुढ़ापे से मैं उन्हें कैसे छोड़ सकता हूं। अपनी सारी जमा-पूंजी वे हम भाई-बहनों को पढ़ाने में लगा चुके हैं। जब मेरी जिम्मेदारी उनके प्रति होनी चाहिए थी, तब मैं उन्हें छोड़कर चला आया।"

"ठीक है। तुम अपने मां-बाप से मिल सकते हो। पर मैं नहीं जाऊंगी कभी। तुम मुझे मजबूर भी नहीं कर सकते। मुझे उस अंधेरी गली और घर में जाते बड़ी घिन लगती है। वहां का एन्वायरेनमेंट ही कितना खराब है। कोई भला आदमी वहां नहीं रह सकता।"

नरेन कैसे कहता कि नीता के मां-बाप के समाज में वह भी तो अनुपयुक्त था। यों नीता का अपने मम्मी-डैडी से भी मात्र औपचारिक ही सम्बन्ध था। कभी-कभार मिलने चली जाती। न चाहते हुए भी नरेन को उसके साथ जाना पड़ता।

नरेन के मां-बाप समाज के उस वर्ग के थे, जिसमें मानवीय सम्वेदनाएं मरी नहीं थीं। पर नीता का जो माहौल था, उसमें सम्बन्ध पैसे पर टिके थे। वहां मानवीय रिश्तों के लिए कोई जगह न थी। नरेन खुद को उस सांचे में ढाल नहीं पाया। लगता—जैसे उसका कुछ खो गया है। उस घुटन-भरे माहौल से घबराकर वह अपने मां-बाप से मिलने चला आता। हंसी-खुशी में कुछ समय कट जाता।

नरेन सोचता जा रहा था। उसकी तंद्रा टूटी तो वह उठकर बाहर ड्राइंगरूम में आ गया। तब तक जतिन और सीमा भी लौट आए थे। "हाय भैया!" कहकर दोनों उसके कंधों पर झूल गए। नरेन के सामने बीते वर्ष आकर खड़े हो गए सहसा।

आज तो हम भैया के साथ खाना खाएंगे।

"घर में खाना है या कहीं बाहर? बाहर चलना है तो झटपट तैयार हो लो। अपने पास बहुत वक्त है।"

"नहीं, सब घर में ही खाएंगे। कितने दिन हो गए हैं इकट्ठा खाना खाए !"

शाम को नरेन उदास मन से लौट आया। जैसे किसी पिंजरे में कैद होने के लिए आया हो। नीता बच्चों को साथ लेकर कहीं गई थी। उसे थोड़ी-सी राहत मिली।

नौकर ने बताया—"मेम साहब गाड़ी लेकर गई हैं। कहती थीं देर से लौटेंगी।"

वह तनिक आश्वस्त होकर बिस्तर पर पसर गया उसने कॉफी मंगाई और नौकर को रात का खाना बनाने के लिए कह दिया। वह अब कहीं जाना नहीं चाहता था। जो सुखद क्षणों की अनुभूतियां उसके साथ थीं, उन्हें संजोकर रखना चाहता था।

नीता से शादी के बाद दो साल में ही दो बच्चे हो गए थे। वह जल्दी इस काम से मुक्त होना चाहती थी। मुक्त समाज में जाने के लिए वह पूरी तरह मुक्त हो गई थी। पर नरेन उस समाज में जाने से कतराता था। उसके संस्कार नीता के साथ चिपके हुए थे। नीता का रात देर तक क्लब में बैठकर पेग-पर-पेग चढ़ाना और फिर बहकना उसे अच्छा नहीं लगता था। पर उससे कुछ कहने की हिम्मत भी नहीं थी उसकी। नशे में धुत्त वह आधी-आधी रात को लौटती।

एक बार नीता से उसने कहा तो वह बिफर उठी थी—तुम अगर गंवार ही बने रहना चाहते हो तो बने रहो, पर मुझे तुम रोक नहीं सकते। मैं तुम्हारी खरीदी बांदी नहीं हूं।

इसके बाद से उसने कुछ भी कहना छोड़ दिया था। पहले वह कॉफी-हाउस की रौनक होता था—अपने को भुलाने के लिए, किन्तु अर्से से कॉफी-हाउस जाना भी छूट चुका था। अब तो वह परकटे परिंदे की तरह एक ही निश्चित दायरे से ज्यादा उड़ नहीं सकता था।

रात खाना खाकर वह लेट गया। नीता और बच्चे पता नहीं कब आए। तभी अचानक उसके सीने में दर्द उठा। वह पीड़ा से छटपटाने लगा। नीता उसे नर्सिंग-होम में दाखिल कराकर लौट गई। वहां रहना उसे असुविधाजनक लगा था।

सुबह उसने नीम बेहोशी में अपने भाई को फोन करने के लिए नर्स से कह दिया। कुछ ही देर में बदहवास-से मां-बाप के साथ जतिन और सीमा वहां पहुंच गए। पर नीता का कोई पता न था। उसने आया को खबर लेने भेज दिया था—इस सूचना के साथ कि मौका मिला तो शाम को आऊंगी।

पर नीता को शाम को भी मौका नहीं मिला। मां-बाप और सीमा काफी देर बाद गए। जतिन वहीं रुका रहा। पर वह अपने ही समाज में मस्त थी—अपने ही दायरे में कैद ! उसे इतनी भी फुर्सत न थी कि नरेन को आकर देख जाती ! पर नरेन...

एक टुकड़ा सुख

जवानी के दिनों में वह अक्सर सपने देखती थी। किसी गबरू जवान के, और उसकी सारी जवानी सपने देखते-देखते बीत गई। तभी जाने कहां से उम्र के आखिरी मोड़ पर जतिन मिल गया। उसे देखते ही वह भूल गई कि उसकी उम्र ढल रही है और अब उसमें किसी को खींचने के लिए कुछ भी नहीं रह गया।

एक पिछड़े इलाके में उसे स्कूल में नौकरी मिल गई थी। वह मां-बाप को छोड़कर निकल आई। मां-बाप ने उसे कितना ही समझाना चाहा पर उस पर कोई असर नहीं हुआ। छोटी बहन का मां-बाप ने विवाह कर दिया था और वह जवानी में कदम रखने के बाद से ही सपने देखती आ रही थी। जब मां-बाप ने उसके लिए लड़का ढूंढ़ने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई दी उसे अपने ही मां-बाप से घृणा होने लगी। वह सोचती, कब उससे पीछा छूटे। नौकरी मिली तो उसने एक झटके से जाने का फैसला कर लिया।

उसकी समझ में न आता कि सांवली होने में उसका दोष क्या है। ऊंची जाति के दम्भ को लेकर परिवार वाले अपने से नीची जाति में उसकी शादी करने को तैयार नहीं थे। रिश्ते भी कई आए थे। परिवार वालों ने उससे पूछे बिना सबको इंकार कर दिया। बड़ी जाति का कोई तैयार ही नहीं होता। यों वह ज्यादा पढ़ी-लिखी भी नहीं थी, सिर्फ मैट्रिक पास थी।

घर छोड़ते समय उसे दुख नहीं हुआ। जिन परिवार वालों को उसकी चिन्ता नहीं थी उनके लिए वह क्यों परेशान होती। पहली बार घर छोड़ते

वह खुशी से भर उठी, जैसे ससुराल जा रही हो।

नयी जगह, नयी नौकरी। वहां पहुंचते ही वह सब कुछ भूल गई। अपने व्यवहार से उसने गांव वालों का मन जीत लिया। वह गांव वालों के लिए अपनी होकर रह गई।

गांव वाले इस उम्र तक ब्याह न होने पर उससे ढेरों सवाल करते। शुरू में वह टाल जाती। कहां-कहां तक औरतों को समझाती। एकान्त के क्षणों में उसे यही सवाल कचोटने लगते। गांव की उससे कई बरस छोटी लड़कियां ससुराल से लौटकर आतीं तो वह छेड़-छेड़कर उनसे ससुराल के किस्से पूछती। उनके जाने के बाद वह दर्पण के सामने खड़ी होकर अपने सफेद होते जा रहे बालों को देखती, अपने चेहरे पर उभरती झाइयों को देखती और फिर सिसक उठती।

जतिन कब उसके करीब आया और कब उसका हो गया, उसे कुछ भी याद नहीं। जाने कहां का था वह—उसने कभी उससे कुछ नहीं पूछा।

जतिन भी कहीं बाहर से आया था सरकारी नौकरी करने। सुमिता जिस गांव में रह रही थी वहां हर तीसरे-चौथे दिन उसका जाना होता। सुमिता मन-प्राण से उसकी हो गई। पहली बार उसने किसी को अपने से ज्यादा चाहा था, पर जतिन तक कैसे पहुंचे। मुलाकात होती। दुआ-सलाम से आगे बात नहीं हो पाती। जतिन यों ही कभी-कभार उसका हाल-चाल पूछ लेता।

जतिन का आना-जाना कुछ ज्यादा ही बढ़ गया। वह तब आता जब वह स्कूल से लौट आई होती। कभी दोपहर में, कभी शाम को।

एक दिन जतिन उसके कमरे में बैठा था। वह खाना बना रही थी। एक ही कमरा। उसी में किचन भी थी। स्टोव पर सब्जी रखकर वह जतिन के पास आकर बैठ गई। अचानक उसे जतिन ने अपनी बांहों में भींच लिया और ढेर सारे चुम्बन जड़ दिए। सुमिता इस सारी स्थिति के लिए तैयार नहीं थी, पर जीवन में पहली बार किसी के स्पर्श ने उसे पुलकित कर दिया। वह बेजान होकर जतिन की बांहों में झूल गई।

जतिन ने कब उसे पूरी तरह अपने आगोश में ले लिया, उसे पता ही नहीं चला। एक बेहोशी जैसी उस पर छाती चली जा रही थी। उसने

आंखें खोलीं तो जतिन के साथ खुद को सटा हुआ पाया। बरसों से अतृप्ति की जिस प्यास के लिए वह भटक रही थी उसे जतिन ने बुझा दिया। उसने अपने शरीर पर निगाह डाली और लाज से आंखें बन्द कर लीं।

उधर स्टोव में सब्जी जलने लगी। कसमसाने लगी। जतिन ने झटके से उठकर स्टोव बन्द कर दिया। एक बार फिर उस पर नशा छा गया। जतिन ने उसे पूरी तरह ढक लिया था। उसकी चेतना लौटी तो वह उठने की कोशिश करने लगी। जतिन ने उसे ढीला छोड़ दिया। बिना जतिन की ओर देखे उसने अपने कपड़े पहने और स्टोव जलाने लगी। जतिन वैसे ही पड़ा रहा।

उसने खाना तैयार कर जतिन को जगाया। वह बोली कुछ नहीं। जतिन भी चुप था। दोनों नीची निगाहें किए चुपचाप खाना खाते रहे।

जाते समय जतिन ने कहा—सुमिता, अनजाने में जो कुछ हो गया, उसके लिए माफ कर देना।

वह कुछ भी तो नहीं बोल पाई। कुछ भी नहीं।

जतिन आता और वह समर्पित हो जाती।

एक दिन उसने कह ही दिया—"जतिन, आखिर कब तक इस तरह चलता रहेगा। मैं तुम्हारा इन्तजार करने की अधिकारिणी बनना चाहती हूं।"

"सुमिता, जल्दी ही वह दिन भी आएगा। तुम मुझ पर विश्वास करो।"

जतिन-सुमिता के बारे में भी अफवाहें उड़ने लगीं। सामने कोई कुछ न कहता पर पीठ पीछे पचासों तरह की बातें होतीं।

एक दिन जतिन आते ही बोला—"मिठाई खिलाओ सुमिता।"

वह भौचक्की देखती रही। आखिर बात क्या है, उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

"मेरा ट्रांसफर हो गया है।"

सुमिता जैसे आसमान से गिर गई। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया।

जतिन मुस्कराता रहा। उसने जेब से कागज निकालकर सुमिता के

हाथों में थमा दिया—यह तो सुमिता के ट्रांसफर का आर्डर था।

जतिन ने काफी ले-देकर अपना और सुमिता का एक ही शहर में ट्रांसफर करा लिया था। सुमिता खुशी से बच्ची की तरह जतिन की बांहों में झूल गई।

जतिन और सुमिता दूर शहर में चले आए। दोनों ने सबसे पहले एक मंदिर में शादी कर ली। जतिन के कहने पर सुमिता ने अपनी नौकरी भी छोड़ दी। अब वह जतिन की थी और जतिन उसका।

जतिन टूर पर ही ज्यादा रहता। सुमिता के लिए एक-एक क्षण भारी हो उठता। तीन-चार बरस बीत गए। सुमिता एक बच्ची की मां बन गई। सारी खुशियां उसकी बांहों में थीं।

शाम का वक्त था। सुमिता बच्ची को खिला रही थी। तभी अचानक दो व्यक्ति सामने आ गए। वह उन अजनबियों को देखकर हकबका उठी।

"जतिन का घर यही है क्या?"

उसने आंचल संभालते हुए कहा—"हां।"

उनमें से एक ने दरवाजे के बाहर आवाज दी—"अंजु, भीतर आ जाओ।"

तभी एक युवती भीतर आई। वह किसी भले घर की लग रही थी पर उसके चेहरे पर घने विषाद की छाया थी।

"क्या काम है?"

"यह जतिन की बीवी है।" एक ने उस युवती की ओर इशारा किया।

सुमिता जैसे आकाश से गिर पड़ी हो। उसके मुंह से आवाज नहीं निकली। उसके सुखी जीवन में आग लग गई थी।

उसने साहस कर कहा—"इतना बड़ा झूठ बोलते आप लोगों को शर्म नहीं आती। जतिन की बीवी मैं हूं—यह उनकी बच्ची है।

—ठीक है, झूठ-सच का फैसला तो खुद जतिन करेगा। जिसने अंजु के साथ सात फेरे लिये हैं। तुम क्या फैसला करोगी। तुमने तो सीधे-सादे जतिन को फंसा लिया है। यह भी नहीं देखा कि उसकी पहले से बीवी

है। किसी का बसा-बसाया घर उजाड़ते तुम्हें ही शर्म आनी चाहिए।"

"जतिन ने मुझे कभी कुछ नहीं बताया।"

"जतिन कहां है ?"

"वह हफ्ते-भर के लिए टूर पर गए हैं।"

"जतिन को बता देना। हम हफ्ते-भर बाद फिर आएंगे और तब फैसला करके ही जाएंगे।"

वे तीनों चले गए। सुमिता का सिर घूमने लगा। बनी-बनाई गृहस्थी उजड़ गई थी। जिस जतिन पर उसे विश्वास था उसी ने इतनी बड़ी सजा दे दी। नौकरी तो कब की छूट चुकी थी—उसने स्वयं छोड़ दी। अब उसके पास क्या था। बच्ची का बोझ लादे वह कहां भटकेगी। मां-बाप के लिए तो वह कब की मर चुकी थी। अपना कहने के लिए कोई नहीं रहा।

सुमिता के सामने बड़ी विकट स्थिति थी। जतिन ने अब तक जो सुख उसे दिया उसे सच माने या अभी-अभी जो घटा उसे ? उसने महसूस किया कि जैसे किसी ने उसके मुह का कौर छीन लिया हो और घर में कुछ भी न बचा हो।

एक पल वह सोचती कि बच्ची को लेकर कहीं दूर निकल जाए और दूसरे पल सोचती कि जतिन से फैसला करके ही रहेगी। आखिर उसने तै कर लिया कि वह जतिन के आने के बाद पूछेगी कि जो कुछ उसने देखा-सुना है वह सिर्फ एक डरावना सपना था या एक कटु सत्य ?

हफ्ते-भर बाद जतिन जब लौटा तो सुमिता ने उससे अंजु के बारे में पूछा। अंजु का नाम सुनते ही जतिन का चेहरा पथरीला हो गया। सुमिता के बार-बार पूछने पर भी जतिन ने कोई जवाब नहीं दिया। सुमिता समझ गयी कि अंजु सचमुच जतिन की पहली बीवी है और जतिन ने उससे न केवल विश्वासघात किया है बल्कि उसका एक टुकड़ा सुख भी उससे छीन लिया है।

दुलारी का दूल्हा

मौनी बाबा किसी से ज्यादा बोलता नहीं था। उसके पास आने वालों में ज्यादातर ऐसे लोग होते जो दम लगाने आते थे। दम लगाते और लौट जाते।

दो पहाड़ी नदियों के संगम पर मन्दिर बसा था। मन्दिर उजाड़ ही ज्यादा था। एक जमाने में यह मन्दिर आजादी की लड़ाई लड़ने वालों का केन्द्र था। तब जो बाबा जी थे वे इलाके के लोगों के प्रेरणास्रोत थे। वे इलाके के लोगों को अंग्रेजों के खिलाफ उकसाते और जो सक्रिय लड़ाई में थे उनके परिवार वालों की मदद करते। उन बाबा जी की देह छूटने के बाद फिर कभी इतनी रौनक मन्दिर में नहीं देखी गई। बड़े-बूढ़े भी अक्सर बताते। कभी-कभी कोई बाबा आता। महीना-दो महीना या साल-दो साल टिककर लौट जाता।

मौनी बाबा आया यो अर्से से वीरान पड़े मन्दिर में रौनक लौट आई। उजाड़ मन्दिर में फिर से जीवन लौट आया।

मौनी बाबा की उमर भी कोई ज्यादा न थी, पैंतीस-चालीस के बीच होगी। लोग जब उसका पता-ठिकाना पूछते तो वह कहता, जोगी और सांप का कोई घर नहीं होता। जोगी और नदी को कोई बांध नहीं रोक सकता।

बाबा कहां से आया यह कोई नही जानता। कहने वाले कहते—आठ-दस बरस से इसी इलाके में घूम रहा है। पहले दो मन्दिरों में टिका, पर लोगों ने इसके रंग-ढंग अच्छे नहीं देखे सो चलता कर दिया। गांव के लोग मन्दिर में ऐसे बाबा को रहने क्यों देते भला, जो गांव की बहू-बेटियों को बुरी निगाह से देखता था।

अब वह चार-पांच बरस से धूनी रमाये इस मन्दिर में जमा था। मील-भर से पहले कोई गांव भी नहीं था। वह मन्दिर में क्या करता है इससे किसी को कोई मतलब नहीं था।

बाबा का नियम था कि शाम छह बजे के बाद किसी को मन्दिर में टिकने नहीं देता। सबेरे-सबेरे कुछ निठल्ले आ जाते दम लगाने के चक्कर में, तो उन्हें भी भगा देता। दोपहरी में किसी के आने-जाने पर कोई रोक-टोक नहीं थी। बाबा ज्यादा किसी से नहीं बोलता; बस चुपचाप पड़ा रहता। लोगों ने उसका नाम मौनी बाबा रख दिया।

घाटियों के बीच नदियों से घिरा मन्दिर। बरसात में नदियों का भयंकर गर्जन और चारों ओर फैला कोहरा वातावरण को और भयंकर बना देता। मन्दिर के चढ़ावे से मौनी बाबा का खर्चा निकल जाता। हफ्ते-दो हफ्ते में कभी-कभार बाजार की तरफ हो आता—चार-पांच मील दूर और खरीद-फरोख्त कर लाता।

दुलारी रात को अक्सर अपनी जवान होती जा रही लड़की को अकेले छोड़कर कहीं चली जाती है, यह किसी को पता नहीं था। वह आधी रात के बाद भैंस दुहकर, एक लोटा दूध लेकर सीधे मौनी बाबा के पास पहुंचती। उसके बाद सुबह वापस लौटती। डेढ़-दो मील की दूरी पर मन्दिर था। सुबह लौटते समय लोग समझते, दिशा-मैदान से आ रही होगी। हाथ में लोटा भी होता। शक की गुंजाइश नहीं थी।

दुलारी रामप्रसाद को नहीं भूल पायी थी जो मौनी बाबा बनकर उसके लिए वीराने में जोगी बना पड़ा था। उसकी ही खातिर रामप्रसाद अपना सब कुछ छोड़कर उसके पीछे चला आया था। उमर दुलारी की तीस-बत्तीस से ज्यादा न थी। बारह-तेरह बरस की छोकरी थी उसकी।

पति परदेश में नौकरी करता। सोलह-सत्रह बरस की रही होगी जब शादी हुई थी। पति शादी के हफ्ते-भर बाद ही नौकरी पर चला गया था। पति का सुख उसे एक रात ही मिल पाया। जवानी आखिर कब तक इन्तजार करती। दो साल तक पति नहीं लौटा तो पड़ोस के ही रतन से आंख लड़ गई। पति ने जो कुछ उसे नहीं दिया रतन ने दे दिया। दो-तीन महीने निकल गए। उसे घबराहट हुई। आखिर रतन ही उसे उसके पति

के पास छोड़ आया। अपने पति को उसने सात महीने बीतते-न-बीतते एक लड़की का बाप बना दिया।

पति सबेरे काम पर निकल जाता और रात को लौटता। खाना खाकर सो जाता। पति-सुख के लिए दुलारी तरसती रह गई। दुलारी को वह चाहता कम नहीं था। पर चाहने भर से क्या होता है।

दिन-भर दुलारी अकेले रहती। एक दिन छत पर कपड़े सुखाते हुए दुलारी को नजरें रामप्रसाद पर अटक गई। वह उसे देखती ही रह गई। बस फिर क्या था। पति काम पर चला जाता और रामप्रसाद दुलारी के पास पहुंच जाता।

उसके पति को एक दिन इसकी भनक पड़ गई। उसने कहा कुछ नहीं। वह ताक में रहने लगा और एक दिन दोनों को रंगे हाथ पकड़ लिया।

हफ्ते-भर बाद दुलारी को उसका पति गांव छोड़ गया। दुलारी को अकेलापन काट खाने को दौड़ता। जेठ-जेठानी थे जो अलग रहते थे। उनकी कोई औलाद न थी। दोनों भाइयों के परिवार में दुलारी की ही लड़की थी। रतन भी अब नौकरी पर चला गया था।

दुलारी की कद-काठी को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि उसकी बेटी भी होगी। दुलारी और उसकी बेटी सगी बहनें लगतीं। वह तो बीस-बाईस से ज्यादा की नहीं लगती थी।

एक दिन एक बाबा आकर उसकी दहलीज पर बैठ गया। उसने नजरें झुकाकर उसे भिक्षा देनी चाही पर बाबा ने मना कर दिया।

"फिर क्या चाहिए बाबा?" अनमने मन से पूछा उसने।

"जिस माई के लिए जोग लिया है वही नहीं पहचान रही है।"

दुलारी ने घूरकर देखा तो झट पहचान गई—और यह उसका रामप्रसाद है।

रामप्रसाद पास के मन्दिर में बस गया। दुलारी देर-सवेर जाकर मिल आती। लोगों को बाबा पर कुछ संदेह हो गया तो भगा दिया। फिर वह दूसरे मन्दिर में रहा और सात-आठ महीने में वहां से भी चलता कर दिया गया।

उसके बाद बाबा बना रामप्रसाद घाटी के मन्दिर में आ गया। दुलारी

के मन-प्राण तो उसी में बस चुके थे।

कई बरस बाद दुलारी का पति नौकरी से छुट्टी पर आया। पति के आने बाद भी उसके रंग-ढंग नहीं बदले। पति को संदेह हो गया। उसने दो-तीन रात उसका पीछा किया। असलियत समझते उसे देर नहीं लगी। वह खून का घूंट पीकर रह गया।

आखिर उससे न रहा गया तो उसने दुलारी को जाते हुए पकड़ लिया—"रांड, तेरे लिए मैंने क्या कमी कर रखी है जो तू अपने यार के पास जाती है। वह भड़वा मेरी नाक कटाने यहां तक आ गया।

"बड़े मर्द बनते हो। तुम समझते हो कि मुझे खाने-पहनने के अलावा और कुछ नहीं चाहिए। मेरी जवानी बर्बाद करके अब मुझे रोकने वाले तुम कौन होते हो! मैं जिन्दगी-भर तुम्हारे नाम की माला ही जपती रहूंगी क्या ?"

"तेरी खातिर मैंने दूसरी शादी भी नहीं की।"

"मुझे बहुत सुख दे दिया है न तुमने, जो दूसरी को भी देते।"

"तू आखिर चाहती क्या है! मैं आज फैसला करके ही रहूंगा। तू या तो मेरे साथ रह या फिर उस भड़वे के साथ चली जा।"

"तुम मेरी बोटी-बोटी कटवा दो तो भी मैं तुम्हारे नाम की आरती उतारने से रही।"

इसके बाद उसने अपने सारे जेवर उसके हवाले कर दिए और एक दरांती हाथ में लेकर चल दी अपने मौनी बाबा के पास।

गांव में हंगामा हो गया। गांव की बदनामी का डर। आस-पास के लोग भी पहुंच गए। आंधी से भी तेजी से खबर उड़ गई—दुलारी मौनी बाबा के साथ रहने चली गई है।

सब मन्दिर में पहुंच गए। देखा, दुलारी और बाबा मन्दिर के आंगन में पीपल के पेड़ के नीचे आमने-सामने बैठे हैं।

सब चिल्लाये—मारो साले को। इस कुतिया को भी डंडे जमाओ। पर दुलारी के पति ने सबको रोक दिया। वह उन दोनों के पास पहुंचा और बाबा से बोला—"अपनी खैर चाहता है तो इसको लेकर अभी यहां से दफा हो जा। अगर नहीं गया तो इसी पेड़ के नीचे गाड़ देंगे।"

बाबा ने कहा—"दुलारी के कारण मैंने घर-बार छोड़ा, संन्यासलि या, और आज संन्यास छोड़कर यहां से चला जाऊंगा।"

वहां एकत्र लोगों की घृणा का जवाब हिकारत से देते हुए दोनों मन्दिर से बाहर निकल गए। दुलारी ने इस बीच गेरुवे कपड़े पहन लिये थे। अपने पुराने कपड़े पति की ओर फेंकते हुए उसने कहा—"तुम्हारा केंचुल तुम्हारे हवाले कर रही हूं।"

अपने-पराये

राजू सन्न रह गया।

बड़े भाई इतना नीचे उतर आएंगे, ऐसा उसने सपने में भी नहीं सोचा था।

जिस भाई ने उसकी नौकरी लगाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया था वही आज उसे नौकरी से निलम्बित करने का आदेश दे रहे थे।

वह महीने-भर से बिस्तर पर पड़ा था। उधर अपाहिज मां अलग बिस्तर पर थी। पत्नी का एक गुर्दा पहले ही बेकार हो चुका था और दूसरा भी सिर्फ कामचलाऊ था। मां और पत्नी की हालत से राजू कभी परेशान नहीं हुआ पर आज उसे बड़ा आघात लगा।

भाई साहब ने अपनी ही कम्पनी में उसे नौकरी दिला दी थी। वे एक्जीक्यूटिव थे। पिता के रहते हुए काफी पढ़ लिया था सो अच्छी नौकरी मिल गई। राजू पढ़ाई में साधारण था सो क्लर्क लगा दिया, पर राजू को साफ-साफ कह दिया कि वह किसी से यह नहीं कहेगा कि वह उसका भाई है। राजू ने इस आदेश का पालन किया। उसने कभी किसी के सामने भेद नहीं खोला।

पिता तीन कमरों का एक मकान छोड़ गए थे। भाई साहब को अपनी अत्याधुनिक पत्नी और बच्चों की वजह से कम्पनी के फ्लैट में रहने की सुविधा थी। मां राजू के ही साथ रहने लगी। इस बीच राजू का विवाह भी हो गया।

कई वर्ष तक ठीक-ठाक चलता रहा। भाई साहब बूढ़ी मां से मिलने

कभी-कभार आ जाते, और उन्हें किसी से कोई मतलब नहीं था। इस बीच उन्होंने अपना मकान बनवा लिया।

पर उनके मन में बराबर यह खटका रहता कि राजू पिता के बनाये मकान पर कब्जा कर लेगा। अपना मकान बनाने पर उनकी निगाह उस मकान पर टिकी थी। मां के पास कुछ जमा-पूंजी थी। उसने साफ-साफ कह दिया था कि मकान राजू के पास रहेगा और जो कुछ उसके पास नकदी है यह घनश्याम को दे जाएगी। इसके बाद भी बड़े भाई साहब ने सन्तोष नहीं किया। उन्होंने मां से मिलने आना भी छोड़ दिया। बीमार अन्धी मां कई बार उन्हें याद करती। राजू अपनी तरह से मां को समझाने की कोशिश करता। भाई साहब कितनी घृणित हरकतों पर उतारू हैं, यह भी उसने नहीं बताया। वे कई बार उसे जान से मरवाने का भी प्रयास कर चुके थे।

भाई साहब की पदोन्नति होती रही। वे पर्सनल मैनेजर बन गए। राजू की पदोन्नति की बात तो दूर रही, उसे निकाले जाने की साजिशें होने लगीं। यह साजिश और कोई नहीं उसके अपने ही बड़े भाई करते हैं। वे चाहते कि राजू उनके आगे नाक रगड़े। राजू भी एक ही जिद्दी था। वही कभी उनके पास नहीं गया। उसकी काबिलियत के सभी कायल थे। सी० आर० में उसकी तारीफ ही तारीफ थी। भाई साहब चाहते थे कि किसी-न-किसी आरोप में उसे निलम्बित कर दिया जाये, तब वह रास्ते पर आएगा।

राजू तो किसी और ही ख्याल में खोया रहता। वह परवाह ही नहीं करता।

एक महीने से राजू बिस्तर पर पड़ा था। उसने मेडिकल सर्टिफिकेट भिजवा दिया। गलती यह हो गई कि उसे रजिस्टरी से न भेजकर हाथों-हाथ भिजवा दिया।

उसके हाथ में आदेश था—एक महीने से बिना सूचना अनुपस्थित रहने के कारण निलम्बित किया जाता है। आदेश पर पर्सनल डिप्टी मैनेजर के हस्ताक्षर थे।

हफ्ते-भर पहले ऑफिस के कुछ साथी आए थे। उनसे ही पता चला

कि उसका मेडिकल पर्सनल मैनेजर ने फाड़ दिया है।

एक दिन पहले ही उनका स्टेनो आकर उसे देख गया था। तब भी वह बिस्तर पर ही पड़ा था। वह समझ गया कि मामला कुछ गड़बड़ है। भाई साहब को कई वर्ष बाद यह मौका मिला था। हाथ आया मौका वह कैसे जाने देते।

ऑफिस के साथियों ने उससे पूछ लिया—"राजू, आखिर साहब इतना तुम्हारे पीछे क्यों पड़े हैं?"

"पता नहीं क्यों पड़े हैं, अपनी समझ से बाहर की बात है यार।"

"ऐसा कैसे हो सकता है। इतने लोग ऑफिस में हैं। फिर तुम्हारी नौकरी भी साहब की वजह से लगी, यह तो सबको पता है। लोग तो यह समझते हैं कि तुम्हारी कोई रिश्तेदारी है उनसे?"

"हां, वे मेरे बड़े भाई हैं।"

"क्या?"

आश्चर्य से सब उसकी ओर देखते रह गये। जैसे उसने कोई भयंकर भूल कर दी हो।

"हां, बात सही है। आज तक मैंने किसी को नहीं बताया। अगर तुम लोग जिद्द नहीं करते तो मैं तुम्हें बताने वाला नहीं था। आज यही भाई मेरी जान के दुश्मन बने हुए हैं।"

राजू ने कमरे में लगी एक तस्वीर की ओर इशारा किया। राजू और भाई साहब की तस्वीर लगी थी।

उसके ऑफ़िस के साथी कभी उसे देखते तो कभी उस तस्वीर को।

कौन करेगा इस बात पर विश्वास? कर भी कैसे सकता है? लोग उसकी बात को झूठ मानें, पर यह बात सौ फीसदी सच है।

दोनों भाइयों की फोटो देखकर विश्वास करना ही पड़ा। वास्तविकता से इन्कार भी नहीं किया जा सकता था।

राजू के सामने बचपन की एक धुंधली तस्वीर तैर गई। भाई साहब और वह एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते थे। एक साथ ही सोते थे, और वह उनका ध्यान भी रखते थे। आज वे ही उसे रास्ते से हटाने का दुष्चक्र रच रहे थे।

उसे लगा कि पैसा ही सारे झगड़े की जड़ है। पैसे ने ही भाई को उसका दुश्मन बना दिया है। अगर कहीं वह भी अफसर होता तो शायद भाई साहब भी उस पर हाथ डालने से पहले सौ बार सोच लेते। पर कहां वह छोटा-सा कर्मचारी और कहां भाई साहब उसी ऑफिस के आला अफसर।

राजू सोचता, अफसर होने से ही क्या भाई साहब के लिए वह और मां दोनों पराये हो गए।

मां ने बड़े अरमान और सपने संजो रखे थे। वे सब अरमान, सपने मिट्टी में मिल गए। जब आंखें थीं, बालकोनी में बैठे-बैठे बड़े बेटे का इन्तजार करती। दूसरे मकान में जाने के बाद भी उसका क्रम टूटा नहीं। फिर अचानक ही ध्यान आया कि बड़ा बेटा अब साथ नहीं रहता। फिर चुपचाप भीतर आ जाती। यह उसकी रोज की आदत बन गई।

राजू कई बार मां को समझाता। मां कहती—किसी भी उंगली में चोट लगे, दर्द बराबर होता है। तू सदा साथ रहता है। बलवीर को देखने के लिए आंखें तरस जाती हैं।

राजू चुप्पी लगा जाता। पत्नी की वजह से मां की देख-रेख का पूरा भार उस पर ही था। कभी-कभी वह सोचता कि भाई साहब के अलग रहने से उसे मां की सेवा का जो मौका मिल रहा है उसका फायदा ही उठा ले। बूढ़ा जर्जर शरीर है। फिर मां कहां से मिलेगी। पिता की सेवा तो नहीं कर पाया। पिता के बदले मां की सेवा कर ले तो अच्छा है।

शादी के कुछ दिनों बाद ही भाई साहब-भाभी दूसरे मकान में चले गए। भाई साहब का कहना था कि कम्पनी ने उनके लिए किराये पर मकान ले दिया है। उन्हें जाना ही पड़ेगा। तब राजू की शादी भी नहीं हुई थी। मां चाहते हुए भी रोक नहीं पाई।

इसके बाद भाई साहब ने अपना आलीशान बंगला भी बनवा लिया। राजू की शादी पर वे मेहमान की तरह आए थे। फिर उसी तरह वापस भी चले गए थे। एक प्रकाश था जो पराया होते हुए भी मां के लिए उसका दूसरा बेटा बन गया।

प्रकाश किसी गेस्ट-हाउस में रहता था। उसके मां-बाप बचपन में ही

मर गए थे। राजू की मां से उसे मां का प्यार मिलता। मां से मिलने के लिए वह जब-तब चला आता। मां को भी बड़ा सहारा महसूस होता। उसे लगता, उसके दोनों बेटे उसके पास ही हैं।

राजू को निलम्बन आदेश मिला तो एक क्षण के लिए जैसे वह सकते में आ गया। कोई-न-कोई निर्णय तो लेना ही था। उसने मेडिकल सर्टिफिकेट की डुप्लीकेट प्रति प्राप्त कर ली। उसने निर्णय ले लिया कि वह जनरल मैनेजर से सीधे मिलेगा। अगर फिर भी कुछ नहीं हुआ तो अदालत में जाएगा।

किसी तरह से जनरल मैनेजर से मिला।

"सर ! मैं लम्बे अर्से से बीमार था। मैंने मेडिकल भेजा। उसके बाद भी मुझे सस्पेंड कर दिया गया।

उसने निलम्बन आदेश, मेडिकल की कापी और अपनी एप्लीकेशन उन्हें दे दी। जनरल मैनेजर ने एक सरसरी निगाह डाली और फिर निलम्बन आदेश रद्द कर दिया।"

यह भाई साहब की सबसे करारी हार थी। वे सोच भी नहीं सकते थे कि राजू यहां तक पहुंचेगा। वे तो इस इन्तजार में थे कि राजू भागा-भागा उनके पास आएगा। यह पैसे और पद की गहरी शिकस्त थी।

मां की तबीयत कई दिनों से खराब चल रही थी। राजू ने भाई साहब को कई बार खबर भिजवाई। वे मां की खबर लेने तक नहीं आए। मां थी कि बार-बार पूछती—बलवीर नहीं आया !

राजू के पास कोई उत्तर नहीं था। बीमार मां को उसने हमेशा अंधेरे में ही रखा। अब भाई साहब के बारे में कुछ बताकर दुखी नहीं करना चाहता था। मां जब भी पूछती, वह टाल जाता। कोई और बात छेड़ देता।

मां आखिरी सांस ले रही थी, उसके अब और जिन्दा रहने की कोई आशा नहीं थी। सारी भागदौड़ में सिर्फ प्रकाश ही तो था जो उसके साथ लगा था।

मां की सांस उखड़ गई। उसकी गर्दन एक ओर लुढ़क गई। तीसरा पहर था। चार बजने वाले थे। राजू ने तुरन्त भाई साहब को खबर

भिजवाई। समय बीतता रहा, भाई साहब नहीं आये।

सुबह तक भी भाई साहब का कहीं पता नहीं था। शव को आखिर कब तक घर में रखा जा सकता था। सुबह आठ बजे शवयात्रा निकाली गई। तमाम सम्बन्धी-रिश्तेदार शामिल थे—अगर कोई नहीं था तो वह थे भाई साहब।

इधर अर्थी श्मशान पहुंची और उधर भाई साहब राजू के घर जा पहुंचे। घर में शोक का वातावरण था। भाई साहब ने राजू की पत्नी को दिलासा देने की भी जरूरत नहीं समझी। वे गाड़ी खड़ी करके सीधे मां के कमरे में पहुंचे और उनके बिस्तर, अलमारी, वहां पड़ी मेज की दराजों को टटोलने लगे। उनके हाथ कुछ नहीं लगा। वे गुस्से में हाथ-पांव पटकते हुए 'सबको देख लूंगा' कहते हुए बाहर निकल गये।

घर में आई सारी औरतें आंखें फाड़-फाड़कर उनको देखती रहीं। कभी वे उन्हें देखतीं तो कभी राजू की पत्नी को, जो सुधबुध खोकर पड़ी हुई थी।

श्मशान में शव के जल जाने तक राजू और दूसरे लोग भाई साहब का इन्तजार कर रहे थे। उन्हें क्या पता था कि वे तो न जाने कब से अपनी मां के मरने का इन्तजार कर रहे थे।

एक्सीडेंट

घर में कोहराम मचा हुआ था। मूर्ति साहब अभी तक नहीं लौटे थे। उनकी पत्नी जोर-जोर से चिल्ला रही थी। छोटी बेटी उन्हें जितना ही चुप कराने की कोशिश करती उतना ही वह और जोर से चीखने लगती। आसपास की औरतें भी रोना-पीटना सुनकर वहां आ गई थीं।

किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर माजरा क्या है। मूर्ति साहब की पत्नी बीच-बीच में 'हाय मेरी सुनी, हाय मेरी सुनी' चिल्ला रही थी। सुनीता कहीं दिखाई नहीं दे रही थी।

सुनीता की छोटी बहन ने औरतों को बताया—"दीदी कॉलेज गई थी। उसका एक्सीडेंट हो गया।"

एक्सीडेंट कहां हुआ, कैसे हुआ यह किसी तो पता न था। सुनीता की छोटी बहन ने ही बताया—"एक पुलिस वाला आया था। वह बता गया कि दीदी का एक्सीडेंट हो गया और वह थाने में है।"

मूर्ति साहब अब तक लौटे नहीं थे। अंधेरा फैलने लगा था। मोहल्ले की औरतों का आना-जाना लगा रहा। लोगों के दफ्तरों से लौटने का वक्त हो चला था। मूर्ति देर से लौटकर आये। घर में उनकी पत्नी कोहराम मचाए थी। उनकी समझ में कुछ नहीं आया। बेटी ने उन्हें अलग ले जाकर बताया—"पापा, थाने से शाम को मोटर साइकिल में एक पुलिस का आदमी आया था। उसने आपको थाने आने के लिए कहा है, दीदी का एक्सीडेंट हो गया है और थाने में है।"

एक्सीडेंट और थाना! मूर्ति ने सोचने की कोशिश की। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। एक्सीडेंट हुआ है तो उसे अस्पताल में होना

चाहिए। थाने में क्यों है ! वे स्वयं अपने आपसे सवाल पूछने लगे लेकिन कोई उत्तर हाथ नहीं आया।

बेकार में देर करना उचित न समझकर मूर्ति ने अपने दो-तीन खास-खास पड़ोसियों से अपने साथ चलने को कहा। उनमें दो गजिटेड ऑफिसर थे।

तीनों पड़ोसियों को साथ लेकर मूर्ति थाने पहुंचे। थानेदार कहीं गए हुए थे। ड्यूटी अफसर मिल गया। वे ड्यूटी अफसर से मिले। उसने ऊपर से नीचे तक मूर्ति साहब को देखा और बोला—"सुनीता आपकी ही लड़की है क्या ?"

"जी हां।"

"आपका नाम खूब रोशन कर रही है।"

"आखिर हुआ क्या है साहब, बताइए तो सही !"

ड्यूटी अफसर ने कहा—"ऐसा है साहब, आप तो बहुत शरीफ आदमी लगते हैं। आपकी बिटिया एक रेस्तरां में छः और लोगों के साथ गलत काम करते पकड़ी गई है।"

मूर्ति वहीं चक्कर खाकर बैठ गए। उनके साथ गए पड़ोसियों ने उन्हें संभाला। पड़ोसियों के लिए यह सब सुनना बड़ी हैरत की बात थी।

थोड़ी देर में थानेदार साहब आ गए। मूर्ति उनके पास पहुंचे। थानेदार ने कहा—"आपको देखकर तो बिलकुल नहीं लगता कि आपकी लड़की ऐसी होगी। देखने में तो बड़ी सीधी है।"

अब मूर्ति के गिड़गिड़ाने की बारी थी—"साहब, मेरी इज्जत आपके हाथ में है। लगता है उसे गलती से पकड़ लिया गया है। मेरी लड़की बड़ी सीधी है।"

"जी हां, सीधी है, लेकिन उसे मैंने नहीं क्राइम ब्रांच वालों ने पकड़ा है। एस० पी० साहब खुद उस दस्ते में थे।

मूर्ति के पास कोई जवाब नहीं था। थानेदार ने फिर कहा—"इसने अपना नाम और घर का पता तक पहले गलत बताया। अगर यह तभी उन्हें बता देती कि कॉलेज में पढ़ती है तो एस० पी० साहब स्वयं ही छोड़ देते।"

"किसी तरह से कुछ कर दीजिए साहब। मैं बदनाम हो जाऊंगा। जवान लड़की है, सारी जिन्दगी के लिए कलंक लग जाएगा।"

"कलंक की फिक्र होती आपकी लड़की को तो इन पेशेवर लोगों के साथ नहीं जाती। इस बात को जाने दीजिए। मुझे आप पर तरस आ रहा है। आप बुजुर्ग हैं, शरीफ हैं। आपने आने में देर कर दी। केस दर्ज हो चुका है। पहले आ गए होते तो इसे छोड़ देता। अब तो जमानत करानी पड़ेगी। आप जमानत कराकर अभी ले जाइए। बाकी तो पेशेवर हैं, रात-भर यहीं बन्द रहेंगे। लेकिन हां, सुबह आप नौ बजे तक आ जाइए। फिर कोर्ट में जाना पड़ेगा।"

और अगली सुबह मूर्ति की लड़की की जमानत हो गई। वे उसे अपने साथ घर ले आए। आते ही सुनीता सीधे अपने कमरे में घुसी और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया।

मूर्ति की पत्नी आश्चर्य में थी। कहीं कोई चोट नहीं—फिर यह कैसा एक्सीडेंट हुआ। उसने पूछा—"क्या हुआ था मेरी सुनी को?"

"उसे क्या होना था। मेरा नाम रोशन कर दिया। अभी उसे कुछ मत कहना। अगर कहीं कुछ कर-करा लिया तो और नाम हो जायेगा हमारा।"

"आखिर हुआ क्या था?"

"तुम्हारी लड़की बहुत सीधी है। किसी से नहीं बोलती। बस कॉलेज जाती है और सीधे घर चली आती है। आवारा लड़के-लड़कियों के साथ गलत काम करते पुलिस ने पकड़ लिया।"

"मेरी बेटी ऐसा कर ही नहीं सकती।"

"हां, मैं भी यही कहता हूं। मूर्ति ने व्यंग्य से कहा।"

"अब क्या होगा?"

"होगा क्या? कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने पड़ेंगे। केस चलेगा। सजा भी हो सकती है। बुढ़ापे में यही देखना बाकी रह गया था।"

तब तक मोहल्ले में खबर फैल चुकी थी। शाम के अखबार में सुर्खियों में खबर पहले ही छप चुकी थी। जिसे नहीं भी पता था उसे भी पता चल गया।

मूर्ति ने दूसरे दिन सुनीता से घटना के बारे में जानने की कोशिश की।

उसने कहा—"पापा, वह लड़का रोज ही बस-स्टाप पर दिखाई देता था। कल उसने मुझे छुरा दिखाकर कहा कि यदि मैं उसके साथ नहीं गई तो वह मुझे छुरा मार देगा। डरकर मैं उसके साथ उस होटल में चली गई। वहां पहले से दो लड़कियां और तीन लड़के बैठे थे। हमारे वहां पहुचने के दस मिनट बाद ही पुलिस ने छापा मारकर हमें पकड़ लिया।"

गहरी सांस लेकर मूर्ति बोले—"ठीक है बेटा। वकील से मिलकर बात करूंगा।"

उसके बाद मूर्ति की भागदौड़ शुरू हो गई। वकील ने जमानत भी लड़की की करा दी थी।

केस था कि कोर्ट में शुरू ही नहीं हो पा रहा था। मूर्ति परेशान। उनकी नींद हराम हो चुकी थी। रिटायरमेंट नजदीक था। कहां तो सुनीता की जल्दी-से-जल्दी शादी कराने के फेर में थे और कहां आफत उल्टे गले पड़ गई। थाने और कोर्ट के चक्कर में उनका काफी पैसा खर्च हो गया।

महीनों बाद केस शुरू हुआ। चार-पांच महीने तक केस चलता रहा। जिस लड़के के साथ सुनीता पकड़ी गई थी उसने मूर्ति के घर के कई चक्कर लगाए। उसने मूर्ति से बात करने की कोशिश की पर मूर्ति ने मिलने से इन्कार कर दिया।

अदालत ने अन्तिम फैसला दे दिया। सुनीता को अदालत उठने तक की सजा सुनाई गई। बाकी को छः महीने से लेकर दो साल तक की सजा हो गई।

सुनीता के लिए यह एक दुखद घटना थी लेकिन मूर्ति के जीवन का यह भयंकर एक्सीडेंट था। मोहल्ले में अब वे सिर ऊंचा उठाकर भी चलने से घबराते थे। लोगों के यहां आना-जाना भी उनका बन्द हो गया। उन्हें डर था कि कहीं कोई उनसे एक्सीडेंट की घटना के बारे में न पूछ बैठे।

एक और मुर्दा

"इस उम्र में ऐसा काम क्यों करते हो बाबा ?" मैंने उससे पूछा।

वह किनारे आकर पत्थर पर बैठ गया। सांवला-सा चेहरा और ठिगना कद। सिर्फ एक कच्छा पहने था। बदन में जनेऊ और कन्धे पर अंगोछा लटका था। एक अधजली बीड़ी उसने कान के ऊपर खोंस रखी थी। फिर उसने कन्धे से पानी में भीगा हुआ अंगोछा निकाला और किनारे खड़ा होकर निचोड़ने लगा।

मेरी बात शायद उसने सुनी नहीं थी। मैंने फिर अपनी बात दोहराई तो उसने चौंककर मेरी तरफ देखा। अंगोछा पत्थर पर सूखने के लिए छोड़ दिया।

उसने कान से अधजली बीड़ी निकाली और पत्थरों के बीच कहीं से माचिस निकालकर बीड़ी सुलगा ली। वह मेरे पास आकर खड़ा हो गया। बीड़ी का कश लेकर बोला—"जब तक जीवन की आखिरी सांस है तब तक इस पापी पेट के लिए सब कुछ करना पड़ेगा बेटे !"

उसके चेहरे पर अजीब-सी पीड़ा तैरने लगी थी। मैं कुछ और पूछता तब तक एक और मुर्दा घाट पर आ लगा था। उसने अधसूखा तौलिया उठाया और कन्धे पर डालकर चल दिया।

वह घाट पर मुर्दा जलने के बाद वहीं राख बह जाने के बाद पानी में डुबकी लगाकर चांदी और सोने के टुकड़े तलाशता रहता था। हड्डी में फंसे चांदी-सोने के टुकड़े मुंह से खींचकर निकाल लेता। जब कभी किसी सम्पन्न परिवार का कोई मुर्दा आ जाता तो उसे अंगूठी या कंगन और कभी-कभी सोने का दांत भी मिल जाता था।

वर्षों से उसे देखता आ रहा हूं। कुछ लोग श्मशान के भीतर अपने मुर्दे जलाने की बजाय घाट पर नदी के किनारे जलाते हैं ताकि जलने के बाद सब कुछ नदी में बहा दिया जाय। इसकी वजह से वहां किनारे पर काफी मिट्टी भी खुद चुकी थी।

वह मुर्दा आने पर अपना करीब दस गज लम्बा डंडा लेकर खड़ा हो जाता है। चिता जलने पर आग को डंडे से कोंचता रहता है ताकि चिता जलती रहे और कुछ भी अधजला न बचे। फिर खुद ही चिता ठंडी होने पर राख समेत नदी में बहा देता है।

गजब की फुर्ती है उसमें। उम्र साठ से कम नहीं लगती है। सिर पर बाल गिनने लायक रह गये हैं। वह चिता की आग को इतने मनोयोग से कोंचता रहता है मानो कोई किसान अपनी फसल सहेज रहा हो।

चिता ठंडी हुई और नदी में प्रवाहित। घड़ी भर वह सुस्ताता और तभी कोई और मुर्दा आ जाता। बीड़ी का कश लेकर फिर बुझाकर कान में खोंस लेता। सामने दूर तक खुला-खुला लगता। अन्दर से बराबर धुआं उठता रहता। कभी-कभी शोक-विह्वल औरत-मर्दों का रुदन भी कानों में टकराता। वह इन सबसे बेखबर अपने धन्धे में लगा रहता।

उसने फिर डुबकी लगाई और कुछ देर बाद बाहर निकल आया। उसकी हथेली पर कुछ था। फिर उसने अंगोछा सूखने को छोड़ दिया और बीड़ी सुलगा ली।

वह खुद ही बुदबुदा उठा—'अच्छा शगुन रहा आज तो, असली सोने का कंगन मिल गया।'

उसने उसे चूमा और अपने कच्छे में कहीं खोंस लिया।

"कब से यह धन्धा कर रहे हो?"

"एक-दो बरस की बात हो तो बताऊं! जिन्दगी ही यहीं बीत गयी है। हिन्दोस्तान के तब दो टुकड़े भी नहीं हुए थे। यही धन्धा करते-करते बच्चों को पाला-पोसा, पढ़ाया और जब वे सब कमाने लगे, अपने पैरों पर खड़े हो गये तो उन्हें मेरा यह काम खटकने लगा।" उसने बीड़ी का कश खींचकर कहा।

तभी पंडित वहां आ गया। वह श्मशान में अन्त्येष्टि के बाद तिलांजलि

देने का धन्धा करता है। उसने जेब से बीड़ी का बंडल निकाला। एक बीड़ी बाबा के हवाले कर एक खुद सुलगा ली। बाबा ने अधजली बीड़ी पानी में फेंक दी और नई बीड़ी सुलगाकर भीतर चला गया।

बाबा के बारे में कुछ और जानने की मेरी जिज्ञासा प्रबल हो उठी। मैंने पंडित से पूछा—"बाबा, यह धन्धा कब से करता है ?"

"बीस बरस से तो मैं देख रहा हूं। रहने को घर बनाया। दो बेटे हैं। दोनों ही सरकारी नौकरी पर हैं। बेटे कहते हैं, अब आराम करो। मगर इसकी आदत ही ऐसी है। कभी एक दिन नागा नहीं किया। इसने बेटों के पास जाना ही बन्द कर दिया है। यहीं पड़ा रहता है। कहता है घर पर मन उचाट हो जाता है।" पंडित खैनी मलते हुए कहता है।

मैंने खेनी की तरफ इशारा किया तो पंडित मुस्करा दिया। उसने बनाकर हथेली मेरी तरफ बढ़ा दी।

"पंडित जी, बाबा के बेटे ले क्यों नहीं जाते इसे यहां से ? उम्र भी काफी हो गई है। बेटों को तो अपने बाप का ख्याल होना चाहिए कि बाप इस उम्र में भी हाड़-मांस गला रहा है।"

"ले क्यों नहीं गये ! कई बार ले गये। पर एक-आध दिन में ही खिसक आया। तब से बेटों ने भी आना छोड़ दिया। कभी-कभी इसका पोता चोरी से मिलने आता है। वह जब भी आता है तो यह दिन भर इकट्ठा हुए सोने-चांदी के टुकड़े उसकी जेब में डाल देता है।"

पंडित खैनी फांकने के बाद फिर बताता है—"है असली बाम्हन ! किसी दूसरे के हाथ का छुआ तक नहीं खाता है पर काम डोमों से भी नेस्ती करता है। समझाओ तो बिगड़ जाता है। दिन भर में जो दो-चार पैसे हाथ लगते हैं, राशन-पानी ले आता है और यहीं किनारे पर दो-चार लकड़ी इकट्ठा कर हांडी चढ़ा देता है। कुछ न हुआ तो चने ही सही।"

इसके बेटे कहते हैं यह डोमों वाला काम बन्द कर दो। मुर्दों की बोटियां नोचकर सोने-चांदी के टुकड़े हाथ लगते हैं। मांस-मच्छी तक नहीं छूता। पर इस काम को नहीं छोड़ता। बेटों की शर्त है कि घर तभी आना जब यह काम छोड़ दो। इसने घर छोड़ दिया पर काम नहीं छोड़ा।

"बाबा खुद ही कहता है, 'जो घर मैंने इसी काम को करते-करते

बनाया, उसी के दरवाजे मेरे लिए बन्द हो गये। जब तक बेटे किसी काबिल नहीं थे तब तक तो मेरा काम अच्छा लगा और जब काबिल हो गये हैं तो यही काम खराब हो गया, नेस्ती हो गया।" पंडित खुद ही बतियाता जाता है। तभी उसे कोई बुलाने आ जाता है। वह उठकर चल देता है।

नदी में राख, फूल और अधजली लकड़ियां तैरती चली जा रही हैं। मैं उधर देखता हूं। अंधेरा छाने लगता है। अजीब भय से मैं सिहर उठता हूं। इसके बाद वहां से उठ खड़ा होता हूं।

इतनी देर में बाबा फिर वहां लौट आया। उसके पीछे-पीछे एक और मुर्दा आ गया था। उसने किनारे पर रखा अपना डंडा संभाला और फुर्ती से खड़ा हो गया।

मैं वहां से चल दिया। बार-बार डंडा घुमाता बाबा मेरी आंखों में अब भी घूम रहा था।

रिश्ते की वापसी

हुआं-हुआं करते हुए सियारों का झुण्ड तेजी से सामने के जंगल से निकल गया। बरसाती नाला अपने पूरे उफान के साथ बह रहा था। झींगुरों की किचकिचाहट रात की खामोशी को बड़ी बेदर्दी के साथ तोड़ रही थी।

दीपा को लग रहा था, गांव की खामोशी रात के अंधेरे में ऐसे ही टूटती रहेगी। उसका गला भर आया, फिर रुलाई फूट पड़ी। उसे लगा कि उसकी रुलाई फूटते-फूटते बरसाती नाला बहने लगा है। अंधेरी रात में बरसाती नाले का गर्जन तेज होता जा रहा था।

सारा गांव उजाड़ हो गया था। ब्याह कर जब आयी थी तो तेरह-चौदह साल की रही होगी। दस-बारह वर्ष में ही उसकी जिन्दगी महज सपना बनकर रह जायेगी, उसने सोचा तक नहीं था। बीस-बाईस मवासों का छोटा-सा गांव इतनी जल्दी रीत जायेगा, ऐसी कोई बात जबान पर ला भी नहीं सकता था। पर वह सब कुछ अनहोनी होकर रही।

हैजा आया और पूरे गांव को अपने साथ उजाड़ बनाकर ही छोड़ गया। बच गई दीपा अपनी पहाड़-सी जिन्दगी काटने के लिए। और बच गये गांव के बूढ़े परमानन्द। अब दोनों को ही अपनी-अपनी जिन्दगी भारी लग रही थी।

दीपा को जिन्दगी का हर क्षण बहुत लम्बा लग रहा था। जिन्दगी का एक लम्बा फासला तय करना उसके लिए कठिन समस्या बन गई। बूढ़े परमानन्द के सामने उनका भरा-पूरा परिवार रीतता चला गया और अपना ही मकान, जिसे उन्होंने अपनी जीवन-भर की कमाई से बनाया था उनके लिए खंडहर बन गया।

दीपा के लिए तो जिन्दगी मौत से भी ज्यादा भयावह हो गई, अपना कहने के लिए कोई नहीं बचा। दुख-सुख में अपना जी हल्का कर लेने के लिए भी उसका कोई नहीं रहा। बूढ़े परमानन्द के सामने आज तक उसने कभी सिर उठा कर नहीं देखा था और आज सिर उठाकर देखने के लिए पूरे गांव भर में कोई नहीं बचा। आखिर कब तक दोनों रिश्ते का लिहाज रखते, और कब तक दीपा लिहाज के कारण भुतहे गांव में अकेली रहती। किसी तरह उसने हिम्मत करके अपने रिश्ते के ससुर बूढ़े परमानन्द को एक ही घर में रह लेने को राजी किया।

दीपा कैसे अपनी इस पहाड़-सी जिन्दगी को काटेगी, उनके साथ रहने से उसे क्या सुख मिलेगा—सिवाय कष्टों के, और बीती जिन्दगी याद आने के।—परमानन्द अक्सर यही सोचते रहते।

उन्होंने कई बार दीपा को समझाने की कोशिश की, लेकिन वह उन्हें गांव में अकेला छोड़कर कहीं जाने को तैयार नहीं थी। उसने कह दिया—"आखिर वह जायेगी तो कहां और क्यों?"

परमानन्द अक्सर देखते—दीपा गुमसुम-सी खड़ी रहती है और देहरी पर बैठी-बैठी ही सारी रात आंखों में काट देती है। ऐसा लगता था दीपा प्रतीक्षा कर रही है कि गांव को वीरान कर गये सारे लोग लौटने वाले हैं। वे उसकी हालत पर रो भी नहीं पाते। अन्दर-ही-अन्दर दर्द से छटपटाते हुए वे अपनी मौत की कामना करने लगते। लेकिन उन्हें लगता कि मौत उनके लिए नहीं है, होती तो इतने बड़े गांव के साथ उन्हें भी ले जाती। वे रोना चाहते थे लेकिन रो भी नहीं पाते थे। आखिर वही रोते रहेंगे तो दीपा के आंसुओं को कैसे पोंछेंगे, पर वे देखते दीपा तो जड़-सी हो गई है।

दीपा को याद आता—इसी गांव में कितनी रौनक रहा करती थी। यहीं से हर बार झुण्ड बनाकर मेले में जाती थी, लेकिन अब तो उजड़ा हुआ उसका गांव, उजड़ा हुआ मेला बनकर रह गया है। एक हूक-सी उसके मन में उठती और वह अन्दर-ही-अन्दर कराह कर रह जाती। आखिर इतने बड़े गांव को वह कैसे चलाए। परमानन्द काठी के मजबूत हैं, किसी तरह थोड़ा बहुत काम कर ही लेते हैं। लेकिन कब तक ऐसा चलता रहेगा? उसके मन में कई बार प्रश्न उभरते और उत्तर न पाकर वह हताश हो

जाती। जिन्दगी तो जीने के लिए है—कई बार वह सोचती।

खेतों से लौटती हुई दीपा गांव को खामोशी के साथ देखती—अपने उस गांव को, जो छोटे बच्चों के खेल में डूबा रहता था। हंसी-हंसी में सारी औरतों का समय कितनी जल्दी कट जाता था, खेतों में भी और पनघट पर भी। अब तो टूटी हुई ढेर सारी यादें रह गई थीं जिनके बारे में सोच-सोच कर वह अपना समय काटना चाहती थी—और यही यादें उसको बड़ी बेवसी के साथ डुबा देतीं, वह रो भी नहीं पाती।

उससे चारपाई पर पड़े-पड़े नहीं रहा गया। परमानन्द बड़ी देर से करवटें बदलते-बदलते अब सो रहे थे। उसने दरवाजा खोला और सूने आसमान पर आकर उसकी दृष्टि टिक गई।

प्रातःकाल का संकेत करने वाला 'ब्यैणी तारा' अभी तक न जाने कहां था। सांय-सांय करती हुई जंगल की हवा पूरी तेजी के साथ फैल रही थी। नाले की चिंघाड़ती हुई आवाज और बढ़ गई थी। रात को बहुत पानी बरसा था, लेकिन अब बादल भी आसमान से छंटते जा रहे थे।

उसने बन्दरों की खौं-खौं की आवाज सुनी तो सहम गयी। उसने सोचना चाहा—आखिर कब तक उजाड़ गांव में अपने आपको बनाये रहे, जहां दुख-दर्द पूछने वाला भी कोई नहीं। परमानन्द न रहेंगे तो गांव पूरी तरह श्मशान हो जायेगा। यों अब किस श्मशान से कम था। एक सहारा था जिससे बतियाकर वह अपने दिन काट रही थी।

परमानन्द ने उसे कई बार समझाने की कोशिश की—आखिर किस के लिए अपनी भरी जवानी को बरबाद करने पर तुली है। ब्याह कर ले, सुख न समझ कर ही सही, पर कम-से-कम अपना दुख कहने के लिए तो कोई हो जायेगा। मेरी जिन्दगी दो-चार बरस और रहेगी, तो फिर बाद में क्या करेगी।

लेकिन न जाने क्यों दीपा स्वयं को ही नहीं समझा पाती। वह परमानन्द को क्या समझाती। वह स्वयं नहीं समझ पाती कि आखिर किसलिए वह यहां रह रही है।

यकायक उसके दिमाग में एक बात कौंध गयी। उसे ख्याल आया कि अगर परमानन्द चाहें तो गांव की खामोशी टूट सकती है। गांव के पुराने

दिन फिर लौट सकते हैं। उसने आजमाना चाहा कि परमानन्द में कुछ है भी या नहीं ! वह क्या यों ही सोचने लगी थी ?—उसके मन के किसी कोने से प्रश्न उभरा।

परमानन्द से अपनी बात कह सकने का साहस वह नहीं जुटा पायी। तब उसने उपाय सोचा। आंगन के पास ही जहां रात को परमानन्द पेशाब करने बैठते हैं उसने ढेर सारी राख डाल दी। वह सोच रही थी कि यदि राख में गड्ढे बन गये तो परमानन्द खोया हुआ गांव लौटा सकते हैं और यदि न बने तो फिर अपनी किस्मत को दोष देने के सिवाय और कर भी क्या सकती है।

लगातार हफ्ते भर के अपने प्रयोग के दौरान उसने पाया कि राख में गड्ढे बनते जा रहे हैं। उसके मन में खुशी की लहर-सी दौड़ गयी। पुलक से उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा—वह मां बन सकती है, परमानंद वीरान गांव की खुशी फिर लौटा सकते हैं।

परमानन्द जड़-से बने रह गये। कोई उत्तर उन्हें नहीं सूझ रहा था—न तो 'हां' ही कहते बनता था और न 'ना' ही। गांव के दिन वे लौटा सकते हैं। उन्होंने सोचा, पर आस-पास के गांव वाले क्या कहेंगे—उन्हें लोकलाज की चिन्ता व्यापने लगी।

तब दीपा ने उनके मन की बात महसूस की। उसने उन्हें समझाने की कोशिश की। आखिर लोग बदनामी करेंगे, और कर भी क्या सकते हैं। पर जब अपना कहने को नहीं रहा तो पराये लोगों की बदनामी की चिन्ता आखिर क्यों करें। पराये लोगों ने उसे दिया भी क्या है—यहां तक कि दुःख को हल्का करने भी कोई नही आया।

दीपा ने परमानन्द को समझाते हुए कहा—लोग एक बार कहेंगे, दो बार कहेंगे। उसके बाद कोई याद नहीं रखता। जब हम अपने दुःखों को छाती पर पत्थर रख कर भूलते जा रहे हैं तो पराये गांव वाले कब तक अपनी जबान चलाते रहेंगे।

परमानन्द कभी-कभी आस-पास के गांवों में हो आते। तब दीपा के मन में परमानन्द को समझाने का तरीका सूझा। उसने उन्हें समझाते हुए कहा—मैं रोज आपकी मिरजई और कोट पर थिगलियां लगाती रहूंगी।

कुछ रोज आपको लोग टोकेंगे, लेकिन धीरे-धीरे उनके लिए मामूली बात हो जायेगी।

और हुआ भी ऐसा ही। दीपा उनके आस-पास के गांव में जाने से पहले रोज उनकी नयी मिरजई और कोट पर थिगलियां लगाती रहती। लोगों ने पहले कुतूहल और अजनबीयत से उन्हें कई दिनों तक टोका, लेकिन फिर यह बात धीरे-धीरे बिलकुल मामूली हो गयी। अब लोगों ने परमानंद को टोकना बन्द कर दिया।

परमानन्द की समझ में बात आ गयी।

दीपा के मन की उदासी कटने लगी थी और उसे लग रहा था—सूना गांव फिर आजाद होगा। हर रात उसे खुशियों से भरी हुई महसूस होती। पहली रात परमानन्द के साथ उसे लगा था कि वह सुहागरात मना रही है, और उसके बाद खुशी में डूबी हुई हर रात आती। दोनों एक-दूसरे से लिपटे हुए उजड़े हुए गांव की खोई हुई तमाम खामोशी तोड़ते हुए जा रहे थे। कई बार ऐसे में उसे बीते दिन याद आते और हूक-सी उठकर रह जाती।

दीपा अपनी अधूरी प्यास को पूरा करते हुए मातृत्व के सपने बुन रही थी और उधर परमानन्द अपने पुराने सम्बन्धों को कब का तोड़ चुके थे—अब तो वह अपने नये रिश्ते की पत्नी की सारी खुशियां लौटा देना चाहते थे। दोनों के बीच चालीस वर्ष की उम्र का लम्बा-सा अन्तर सिमटता चला जा रहा था।

और सचमुच गांव की खामोशी टूटने लगी। दीपा ने अपनी उनींदी आंखों से देखा कि खंडहर बना गांव एक मासूम-से बच्चे की किलकारियों में डूबता चला जा रहा है···गांव के उजड़े हुए रिश्ते लौट रहे हैं।

अपनी मौत

मैं उसकी ओर एकटक देखता रहता हूं। मुझे यह सब बड़ा अजीब लगता है। उसके घर के सब लोग रो रहे थे। कई लोग आते हैं और संवेदना व्यक्त करके लौट जाते हैं। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता। कोई प्रतिक्रिया मुझ पर नहीं होती। मैं चुपचाप बैठा रहता हूं।

शायद परसों की ही बात है। मैं अपने सांगन में बैठा था। पत्नी अन्दर खाना बना रही थी। मैं नहाने की तैयारी में था पर आलस्य के कारण नहा भी नहीं पाया। तभी मैंने यहीं आगन में उसे अपने बड़े भाई के साथ खेलते हुए देखा था। उसकी उम्र लगभग तीन वर्ष की रही होगी। इस वक्त भी मैं महसूस कर रहा हूं कि वह अभी उठकर अपने बड़े भाई के साथ खेलने आंगन की ओर दौड़ पड़ेगा।

मेरी समझ में नहीं आता कि लोग रो क्यों रहे हैं। मैं लोगों के चेहरे देखता रहता हूं। सब केवल औपचारिकता निभाने के लिए आ रहे हैं। सब थोपी गयी संवेदना में डूब गए हैं। एक ही सुर में सारी औरतें रोती हैं। धीरे-धीरे आवाज उटती और गिरती है। बच्चे की मां अपने बराबर में बैठी हुई औरतों की ओर देखवी है। तभी उसकी निगाह सामने दरवाजे पर टिकती है, वह आने वाली औरतों को देखकर फिर जोरों से रोने लगती है। बाहर से आने वाली औरतों के साथ चिपटकर चीखती है। फिर जैसे और चुप बैठी हुई औरतें सतर्क हो जाती हैं तो उन्हें ध्यान आता है कि वे शोक मनाने आई हैं और वे सब मिलकर फिर से उनके साथ रोने में शामिल हो जाती हैं।

अभी सुबह ही उसके पिताजी मिले थे, खेतों से लौटते हुए। कहने लगे

कि अब ठीक हो गया है। लेकिन उसका स्वर मुझे कुछ टूटता हुआ-सा लगा। पत्नी सुबह उसकी खबर लेकर गई थी तो कहने लगी कि उसकी एक ही सांस चल रही है, मुझे नहीं लगता कि दोपहर भी काटेगा। हुआ भी ऐसा ही।

मैं खाना खाने बैठा ही था कि तभी रोने की आवाजें एक साथ मेरे कानों से टकराईं। मुझे समझते देर नहीं लगी कि वह मर गया है। मैं खा चुकने के बाद ही इधर चला आया, गांव का कर्त्तव्य पूरा करने के लिए। मजबूरी समझ कर।

उसके पिता जाने क्यों इधर-उधर टहल रहे थे। मैं समझ नहीं पाया। वे आने वाले लोगों के लिए हुक्का भर रहे थे और चुपचाप एक-एक करके सबकी ओर हुक्का घुमा देते। मुझे लगता था कि बच्चे की मौत का उन पर कोई असर नहीं हुआ है। वे रोज की तरह अपने काम-काज में लगे हुए थे। सुबह वे अपनी भैंसों को पानी पिलाकर लौटे थे, अपनी रोजाना की आदतों के अनुसार बच्चों को छेड़ते हुए। खास तौर पर औरतें उन्हें आश्चर्य से देख रही थीं, कि एक ओर तो इनका लड़का मर रहा है, और दूसरी ओर इनकी हरकतों में कोई अन्तर भी नहीं! तब अनदेखा करने के अलावा वे कर भी क्या सकती थीं।

उसकी मां और दादी दूर खेत में गई हुई थीं। पिता उनके जाने से पहले ही लौटे थे। फसल का समय था। खेतों में गये बिना तो पेट नहीं भरता। उसके पिता उसको चम्मच से पानी पिलाते रहे। पर सारा पानी बहकर उसकी नाक की ओर से बाहर आ जाता। तब फिर उसे पानी भी न पिलाया जा सका, वह जीवन और मृत्यु के बीच झूलता हुआ पड़ा रहा। अपनी मां और दादी के दिन ढलने पर पहुंचने के बाद ही उसने दम तोड़ दिया। जैसे उसे दोनों के ही आ जाने की प्रतीक्षा रही हो।

उसके पिता का चेहरा अजीब हो गया। मैं समझ नहीं पाया कि वे रो रहे हैं या हंस रहे हैं। तभी एक ने उस निर्जीव शरीर को सफेद कपड़े के टुकड़े में लपेट लिया और अपने दोनों हाथों में लेकर चल पड़ा। पीछे-पीछे गांव के और भी कुछ लोग थे। उसके पिता हाथ में कुदाल लिये पीछे-पीछे

चलते रहे। सब पुरुष जा चुके थे। सिर्फ स्त्रियों का जमघट वहां लगा हुआ था।

मैं भी बाहर निकल आया और उन सबके पीछे-पीछे चलने लगा। मैं चुपचाप उनके साथ चलता रहा। मेरे आगे उसके पिता लड़खड़ाते हुए से चलते रहे। उन्हें लोगों ने घर लौट जाने को कहा, पर वे बिना कोई उत्तर दिये साथ-साथ चलते रहे।

उनको देखते हुए कभी-कभी लगता था कि मेले में शामिल होने जैसी उनकी गति थी। मैं स्वयं सहम गया। मन में आया भी कि इनके साथ जाकर क्या करूंगा, पर एक औपचारिकता निभाने वाली बात सोच कर अपने चेहरे को निरीह और शोकाकुल बनाता चलता रहा।

गांव से दूर निकल कर सब लोग उस ओर चलने लगे जहां मृत बच्चों को गाड़ा जाता है। वहां पहुंचकर उसके पिता ने स्वयं गड्ढा खोदा। उनके हाथ रह-रहकर कांपने लगते थे। उस आदमी ने उसे आहिस्ते से गड्ढे में डाल दिया, जैसे कि वह सो रहा हो। तब धीरे से सारी खोदी हुई मिट्टी और पत्थर डालकर गड्ढे को बन्द कर दिया। उसके पिता आहिस्ते से उस पर थोड़ी मिट्टी डालते रहे।

सब चुप थे। सन्नाटे के बीच स्वयं को डुबाए हुए। किसी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हो रही थी। मगर मुझे जाने क्यों बड़ा अजीब लग रहा था। मुझे लगा कि सब पत्थर के बुत की तरह थोप दिए गये हैं।

उसके पिता कुछ देर तक तो उस सारी क्रिया को देखते रहे और फिर न जाने क्यों उसी पत्थर पर बैठ गये। मुझे लगा कि अब वह रो पड़ेंगे, पर वह मुस्कराने लगे। उनकी आंखों में आंसू तक नहीं आए। फिर वे चीड़ के एक पेड़ के सहारे खड़े होकर गड्ढे की ओर देखते हुए मुस्कराने लगे।

मैंने उनकी ओर देखा तो उनका चेहरा मुझे बेहद डरावना लगा। मुझे लगा कि इन्होंने जान-बूझकर अपने जीवित बच्चे को गाड़ दिया है। मेरी स्मृति में अपने भाई के साथ खेलते हुए उस मृत बच्चे का चित्र कौंध गया। जो कल तक अच्छा-भला आंगन में दौड़ता फिर रहा था।

सब लोग एक-एक करके घर को लौटने लगे। आखिर वे भी उठे और

मेरे साथ चुपचाप चलने लगे। थोड़ी दूर आने पर उन्होंने पीछे मुड़कर देखा, थोड़ी देर चुपचाप देखते रहे और फिर ठहाका मारकर जोरों से हंसने लगे।

सबने उनकी ओर देखा। वे मुड़ और निरीह भाव से हमारे साथ शामिल हो लिये।

शहर में आखिरी दिन

शहर मेरे लिए एकदम नया था। किसी काम के सिलसिले में यहां आना पड़ा। एक दोस्त भी मिल गया, जिसे घूमने में मजा आता था। वह भी साथ हो लिया।

सुबह शहर पहुंच गया था। दिनभर अपना काम निपटा लिया। रात को खाना खाकर एक होटल से निकले। पान खाकर रवि मुझसे बोला—"चलो, शहर घुमा लायें। रात को इस शहर की जवानी देख लो।"

एक स्कूटर में बैठे और काफी दूर टेढ़ी-मेढ़ी गलियों से होता हुआ स्कूटर किसी मोहल्ले में जाकर रुक गया।

दोस्त के साथ स्कूटर वाला आगे-आगे हो लिया। मैं चुपचाप उनके पीछे चल रहा था। एक मकान की संकरी गली से होते हुए हम लकड़ी के जीने में चढ़ गये। उसके बाद ही कमरा था। जहां कई युवतियां ठीक दरवाजे की बगल में एक सोफे पर शो-केस में सजे माल की तरह सजी-संवरी बैठी थीं।

कमरा बहुत बड़ा नहीं था। एक सोफे के अलावा कुछ अदद कुर्सियां वहां पड़ी थीं, आने-जाने वाले ग्राहकों के लिए। एक तरफ कोने में श्रृंगार-दान रखा था। कमरे के साथ ही सटे हुए तीन या चार केबिन थे। केबिनों और कमरे के बीच एक मामूली-सा गलियारा और गलियारे के आखिर में एक गुसलखाना।

ट्यूब लाइट की रोशनी में कमरा चकाचौंध था। श्रृंगारदान के साथ ही अगरबत्तियां जल रही थीं जिनकी खुशबू कमरे में तैर रही थी।

मेरे लिए स्थिति एकदम अप्रत्याशित थी। उन दोनों के साथ जाकर

मैं बैठ गया। मैं उन सबके चेहरों पर कुछ तलाश रहा था—एक फीकी मुस्कान के सिवाय वहां कुछ नहीं था।

ढेर सारा पाउडर उनके चेहरों पर और बदन पर पुता था। ओंठ सस्ती लिपस्टिक से रंगे थे।

"चलो, पंसद कर लो, सिर्फ ग्यारह रुपये लगेंगे।" आवाज किसी युवती की थी।

मेरे लिए वहां बैठ पाना बड़ा मुश्किल हो रहा था। दम घुटता-सा लगने लगा।

दोस्त ने पूछा—"क्यों, क्या इरादा है?"

मैंने आंख से कमरे से निकलने का इशारा किया। अब तीनों उसी मकान के एक और कमरे में थे। वहां भी वही दुकान सजी थी।

दोस्त बड़ा बोर हो रहा था। मैं उसका साथ नहीं दे पा रहा था—उसके चेहरे पर मेरे लिए अजीब से भाव झलक रहे थे।

वहां से भी मैं उठना चाहता था। मैं खड़ा हो गया तो दोस्त और स्कूटर वाला भी खड़े हो गये और चुपचाप सीढ़ियां उतर गये।

"कुछ अच्छा वाला चीज इधर नहीं मिल सकता।" दोस्त ने पूछा।

"साफ बोलूं साब, लोग झूठ बोलता है जो अच्छा माल दिलाने का बात करता है। आपसे सौ रुपये ले लेगा और यही सस्ता माल उठाकर आपके पास ले आयेगा। झूठ नहीं बोलेगा साब।"

"तो वापस चलो।"

स्कूटर वापस मुड़ गया। मैं पसीने से नहा गया था। सांस बड़ी तेजी से फूल रही थी। होटल के कमरे में आकर मैंने राहत की सांस ली।

"ऐ, सुनो—ऐसे काम नहीं चलेगा। तुमको मेरे साथ कल चलना पड़ेगा। तुम कुछ मत करना, बात तो कर सकते हो।"

मुझे नींद आ रही थी—मैंने अच्छा कहा और पलंग पर पसर गया।

दूसरे दिन होटल में रात को खाना खाते-खाते दस बज गये। मेरा दोस्त और मैं पैदल टहलते हुए कमरे की तरफ चल पड़े। पान की दुकान पर रवि का दोस्त राबिन मिल गया। दोनों में पता नहीं क्या बात हुई कि घूमते-घूमते उसी कल वाले मुहल्ले में घुस गये।

मेरे कुछ कहने से पहले दोस्त बोला—"चलते हैं यार, ऐसी भी क्या बात है।"

मैं एकदम अकेला था। खामोश रहने के अलावा दूसरा रास्ता भी नहीं था मेरे पास।

मैंने घड़ी की तरफ निगाह दौड़ाई, ग्यारह बज रहे थे।

कमरों से जुड़े कमरे। एक मकान में दस से भी ज्यादा ऐसे कमरे थे। उन कमरों के भीतर भी तीन-तीन; चार-चार छोटी-छोटी कोठरियां बनी थीं।

जिस कमरे में हम घुसे वहां पांच-छः युवतियां बैठी थीं। जगह भी ऐसी कोई खास नहीं—वहां बैठते ही एक-एक आकर हरएक के बगल में बैठ गयी।

"बैठना है तो चलो, खाली बखत खराब मत करो बाबा।" एक बोली, तो मैंने उसके चेहरे पर नजरें गड़ा लीं। वह आंखों से इशारा करने लगी। मैं चुप था।

उन सबसे हटकर सामने बैठी उस युवती की तरफ देखा। पाउडर और लिपस्टिक की पुताई के बिना वह छरहरी युवती सबसे ज्यादा आकर्षक लग रही थी। बाकी तो वहां बैठकर कुछ-न-कुछ बोलती जा रही थीं जब कि वह सिर्फ एकटक देख रही थी।

अचानक न जाने क्या हुआ कि मैंने उसकी तरफ उंगली से इशारा किया। वह और मैं बराबर वाली एक कोठरी में थे।

वह ठीक दरवाजे पर खड़ी हो गयी—"पैसा दो।"

"पहले ही ?"

"हां, वहां जाकर देना है।"

"कितना ?"

"तुमको मालूम है फिर भी पूछता है। नहीं मालूम तो निकाल पन्द्रह रुपये।"

"रुपये देकर वह वापस लौटी और आते ही सांकल बंद कर एकदम सारे कपड़े उतारकर पलंग पर सीधी लेट गई।

मैं खड़ा उसे देखता रहा।

"जल्दी करो बाबा। इतनी देर लगायेगा तो हमारा धंधा चौपट।"

"तुम्हारा नाम ?"

'मकबूल।"

"कब से हो ?"

"चार-पांच बरस से हूं। तुमको यह पूछकर क्या करना है। ज्यादा तंग मत करो—जल्दी करो।"

पांच मिनट में ही दोनों बाहर थे। मैं कुछ भी पूछना चाहता था, मकबूल कुछ भी जवाब नहीं देना चाहती थी। मेरे पास भी चुप रहने के अलावा कोई रास्ता नहीं था।

मैं बाहर आकर मेज पर बैठ गया।

'ऊई' की आवाज सुनकर अपने बराबर में देखा। नीली साड़ी वाली युवती के हाथ के ऊपर मैं बैठ गया था।

मैं एक ओर हट गया था। बाकी खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

दोस्त ने आते ही बाहर चलने का इशारा किया। अब हम तीनों ही एक और कमरे के सामने थे।

कमरे में कुल मिलाकर सात लड़कियां थीं। दो की उम्र तो अंदाजन तेरह भी नहीं रही होगी।

आपस में ही वे सब एक-दूसरे के साथ छेड़छाड़ कर रही थीं। हीरा, सुमन, राजू, शीला श्यामा, शारदा, न जाने क्या-क्या नाम थे।

यों नाम कोई भी हो, उससे फर्क नहीं पड़ता। जिन्दगी की मजबूरियों ने पता नहीं कितनों को यहां लाकर बिठा दिया था।

वे दोनों बैठ चुके थे। उन्होंने मुझे बैठने का इशारा किया तो मैं उनके सामने बैठ गया। एकदम बराबर में देखा।

एक सांवली-सी छरहरी युवती शीशे के सामने बैठी बाल बना रही थी। शीशे पर नजर गई तो वह हौले से मुस्करा दी।

कुछ ही देर में वह कुर्सी सरकाकर मेरे करीब खिसक आयी।

इस बीच दोस्त ने छह-सात चाय मंगवा लीं। उसने एक गिलास थमा दिया।

"शराब तो नहीं पी है न !" मेरे होंठों के करीब अपने होंठ लाते हुए उसने कहा। मैं चुप। देखा सामने वे दोनों एक ही युवती को बीच में बिठाये उसके साथ छेड़छाड़ किये जा रहे हैं।

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"पद्मा।"

"नाम तो अच्छा है।"

"मैं बुरी हूं क्या ?"

"नहीं, ऐसा किसने कहा ?"

उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया और खेलने लगी।

हर बार दो-तीन लोग दरवाजे पर आ खड़े होते। कोई उठकर लोहे का दरवाजा खोल देती या फिर 'जगह नहीं' कहकर उन लोगों को वापस लौटा देती।

लोगों का आना-जाना जारी था। पद्मा वहां से उठी नहीं।

"चलो न अन्दर," उसने कहा। मैं बिना कुछ सोचे उसके पीछे था।

रुपये लेकर उसने कहा—"तुम बैठो बाबू, मैं अभी आयी।"

थोड़ी देर में वह अन्दर थी। वह कोठरी में बिछी चारपाई पर आकर बैठ गयी।

"कब से हो यहां ?"

"साल भर से।"

"यहां कैसे आई ?"

"यहां मेरी सहेली हीरा है न, वही गुलाबी साड़ी वाली, जो अभी बाहर निकली। उसी के साथ आयी।"

"कहां की रहने वाली हो ?"

"कोल्हापुर की।"

"ऐसी जगह क्यों आई ?"

"गरीबी ऐसी बुरी चीज है बाबू। सब तकदीर की बात है। यहां हूं—पैसा है। खूब खाते हैं, सिनेमा देखते हैं। पहले तो कई-कई दिन खाना ही नहीं मिलता था। अब जो मन होता है खाते हैं।"

मैं चुप हो गया। मेरे पास उसकी बातों का कोई जवाब नहीं था।

"तुमने 'कहानी किस्मत की' देखी है क्या ?"

"नहीं तो।"

इसके बाद वह धीमे-धीमे किसी फिल्म का गाना गुनगुनाने लगी। फिर एकदम से पूछने लगी—"पहले तो नहीं आये बाबू।"

"हां, बाहर से आया हूं।"

"किधर से ?"

"दिल्ली से।"

"अच्छा !"

उसके चेहरे पर दर्दभरी मुस्कान की लकीरें थीं।

"फिर आओगे।"

"कल चला जाऊंगा।"

"फिर कब आओगे ?"

"कुछ पता नहीं।"

"जब आओगे तो मिलोगे न ?" उसने मेरी आंखों में आंखें डालकर पूछा।

"हां, जरूर आऊंगा।"

मैं जानता था कि सच नहीं है। लेकिन मेरे यह कहने से पहले ही उसने मुझे जोरों से भींच लिया। अपने होंठ मेरे गालों से सटा दिये।

मैंने अपने गाल पोंछ लिये।

"किस करना अच्छा नहीं लगता क्या ?"

"लगता है, पर तुमने तो सारा लिपस्टिक मेरे गालों पर चिपका दिया है।"

"नहीं, वह तो मैंने पहले ही पोंछ लिया था।"

"तुम सबसे ऐसे ही बातें करती हो क्या ?"

"नहीं, हर ग्राहक के साथ ऐसे बातें करने लग जायें तो धंधा चौपट। तुम अच्छे लगे तो दो बात कर ली और दो सुन ली।"

"तुम इतनी देर से बात कर रही हो। बगल वाली कोठरी तो खुल चुकी है। कोई डांटेगा नहीं तुम्हें ?"

"नहीं, हमारे घर में ऐसा नहीं होता।"

"तुम आराम से बैठकर बातें कर रही हो—अपना टाइम बरबाद कर रही हो। मेरे पास तुम्हें देने के लिए अब पैसा नहीं।"

"पैसा नहीं चाहिए। तुमको अच्छा लगा तो तुमसे बात करने लगी। नाराज होते हो तो जाऊं।"

"नहीं, नहीं।" कहकर मैंने उसे फिर बैठा दिया। वह मेरे बालों में उंगली घुमाने लगी।

काफी देर बाद उठा। घड़ी पर नजर घुमाई तो एक घंटा हो गया था।

"तुम यहां बैठो, बाबू। अभी आयी।" कहकर वह बाहर गयी और फिर दो मिनट बाद आकर कहने लगी—"चलो।"

मैं बाहर कमरे में आ गया था। दोस्त वहां नहीं था, सिर्फ बैग रखा था। मैं समझ गया।

पद्मा अपने बालों को ठीक करके मेरी बगल में बैठ गयी। उसने पास पड़ी फिल्मी पत्रिका उठा ली और मुझे हीरो-हीरोइन के नाम बताने लगी। पत्रिका हिन्दी में थी। कहीं-कहीं वह कुछ पूछ लेती।

"हिन्दी पढ़नी आती है क्या?"

"नहीं।"

"मराठी?"

"थोड़ी-थोड़ी।"

"सिनेमा देखती हो?"

"बहुत।"

इस बीच दो-तीन लोगों ने उसको इशारा किया, पर उसने अंगूठा दिखा दिया।

घड़ी देखी। दो बज चुके थे। पद्मा दो घंटे से ज्यादा समय से मेरे साथ बैठी थी।

वह अब मेरी हथेली को थामे उंगलियों से खेलने लगी। उसकी निगाह अंगूठी पर टिक गयी।

"कितने की है?"

"पता नहीं।"

"बनवायी तो होगी ?"

"नहीं, कहीं से मिली है।"

"अच्छा" कहकर उसने हथेली को सहलाना शुरू कर दिया।

दोस्त और उसका दोस्त दोनों बाहर आ चुके थे। चलते-चलते तीन बज गये। पांच बजे शहर छोड़कर जाना था।

अब हम तीनों खड़े हो गये। पद्मा दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी—उसने कसकर मेरा हाथ थाम लिया। मैंने अपना हाथ अपनी जेब में डाला और अपनी कंघी निकालकर उसे थमा दी।

उसने कंघी ब्लाउज के भीतर खोंस ली।

"यहां आने पर जरूर मिलना।" कहकर पद्मा ने लोहे का फाटक खींचकर ताला लगा दिया। वह फाटक पर खड़ी रूमाल हिलाने लगी।

हम तीनों चुपचाप नीचे उतर आये। उस मोहल्ले को आखिरी सलाम कर मेन सड़क की तरफ मुड़ गये।

खंडित संदर्भ

और वह लौटकर फिर इस शहर में आ गया।

कुछ वर्ष पहले जब वह शहर छोड़कर जा रहा था तो उसने तय कर लिया था कि अब इस शहर में लौटकर नहीं आयेगा। वह कई वर्ष तक दूसरे शहरों की खाक छानकर उनकी सड़कें नापता रहा। फिर विवशता उसे इसी शहर में खींच लाई थी।

शहर में आने पर काफी कुछ बदला-सा लगा। जो वर्षों पहले उसके दोस्त थे उसे देखकर कन्नी काटने लगे। इन लोगों के बारे में बनाई गई उसकी तमाम धारणाएं झन्न से टूट गईं। उसे लगा, वह खुद भी तो टूट चुका है। जिन हालतों में उसे शहर छोड़कर जाना पड़ा था वे अब भी नहीं बदले थे। वह जिससे भी मिलता यह खोखली मुस्कान से स्वागत करता और फिर ढेर सारे उपदेश उगलने लगता। उसे उपदेश उगलने वालों से नफरत थी लेकिन खाली रहने पर जहर के घूंट की तरह उपदेश पीने पड़ते।

कई दिनों तक शहर में भटकने के बाद उसने अनु से मिलने का निर्णय किया। अनु—जिसे वीनस की मूर्ति की तरह सिर्फ देखने में ही असीम सुख पाता रहा है। जिस पर कभी अपना हक समझता था। लेकिन अब परि-स्थितियां बदल गयी थीं।

अनु उसे एकदम सामने पाकर गम्भीर हो गयी। उसके चेहरे पर सदा बनी रहने वाली मुस्कान गायब थी। कभी जिसके हंसते-मुस्कराते गालों पर पड़ते गड्ढे देखकर हमेशा उसे एक नया आकर्षण महसूस होता था वे उस वक्त नहीं थे। रास्ते भर अनु से ढेर सारी बातें कहने की सोचता चला था। लेकिन कुछ कह नहीं पाया, उसे एक बार लगा शायद गलत जगह आ

गया है। अनु एक जमाने में उसके साथ कालेज में पढ़ती थी, एक वर्ष जूनियर था उससे। कविता प्रतियोगिता ने दोनों को नजदीक ला दिया। वह अपनी तमाम बातें अनु को बताकर खुद को बहुत हल्का महसूस करता था।

अनु अब अफसर थी बहुत बड़ी। उसने सोचा, अगर न आता तो क्या बिगड़ जाता ? कभी जिस अनु पर वह अपना हक समझता था वह कहीं दिखती नहीं थी। अब तो एक नयी अनु सामने थी। अनु की चुप्पी बता रही थी कि उसका आना शायद खला है।

बेकार आदमी से सभी नफरत करते हैं। हर एक डरता है कहीं पैसा न मांग बैठे। बेकारी में आदमी की कितनी फजीहत होती है। हालांकि उसने कभी किसी से पैसा नहीं मांगा था फिर भी सारे चेहरे क्यों बदल गये ? कई-कई दिनों तक भूखे रहने की नौबत आई है, बार-बार पानी पीकर पेट में मरोड़ तक उठने लगी—लेकिन किसी के आगे हाथ नहीं पसारे। फिर भी लोग डरते हैं। रोजाना मीलों चप्पल फटकारते हुए कई-कई जगह चक्कर लगाने का सिलसिला बदस्तूर जारी रहा। दिनभर में दो-तीन पैकेट चारमिनार फूंकने वाला वह एक ही सिगरेट कई बार पीता रहा।

अपने एक रिश्तेदार के घर गया था तो वे उसके जाते ही कहीं बाहर जाने के लिए तैयार हो गये। दो-चार मिनट दुनिया भर की खबरों पर टीका-टिप्पणी करके वे चले गये। दस-पांच मिनट वह यूं ही अखबारों के पन्ने उलटता रहा। उनका नौकर एक टूटे से मग में चाय रख गया। चाय का भरा प्याला छोड़कर वह चुपचाप खिसक आया।

दिनभर कोलतार से पिघलती हुई सड़कों पर माथे का पसीना पोंछते हुए भटकना ही शायद नियति है। मई-जून की लू से बचने के लिए बहुत सारे लोग पहाड़ पर चले गये। वह शहर छोड़ना चाहकर भी शहर के चक्रव्यूह से बाहर नहीं निकल सका। अपनी टूटी चप्पलें लेकर घिसटता रहा निरर्थक।

गांव जाने का भी मन नहीं करता। अपने घरवालों की निगाह में निकम्मा था। भला इतने बड़े शहर में नौकरी का घाटा है ? नौकरी करने का उसका मन ही नहीं है। कोई उसे समझना नहीं चाहता। किसी के

आगे वह कभी झुका नहीं। एक दिन से लेकर छः महीने नौकरी करके वह फिर बेकार ही रहा। हर जगह वह अनफिट रहा। वह सोचता है कि किसी ने उसे समझने की कोशिश की होती तो ऐसी नौबत नहीं आती।

उसके जेहन में वर्षों पहले अखबारों में छपी एक खबर तैर गयी। एक नेताजी ने अकाल-पीड़ित क्षेत्र में जाकर लोगों को डबल रोटी खाने की सलाह दी थी, जो खाने को एक भी दाना न मिलने पर पेड़ों की छाल तक खाने को मजबूर हो गये थे।

ऐसी ही कुछ सलाह अनु ने भी पिछली बार उसे दी थी। वह मुस्करा भी नहीं सका। भारी-भरकम रकम पाने वाली अनु भला एक मसिजीवी को और सलाह भी क्या दे सकती थी।

उसका बेकार रहना अनु को उतना नहीं खटकता जितना कि एक बेकार आदमी का मिलना। किस हैसियत से अपने समाज में उसका परिचय कराये। अपने अफसर होने की खुशी में अनु ने अपने कॉलेज के साथियों को पार्टी दी थी। बुलाने पर वह भी चला गया। सब अपने आप में मशगूल थे। वह उपेक्षित-सा कुछ देर बैठा रहा। खुद को अनचाहा समझते हुए वह बिना किसी से कुछ कहे उठकर चला आया। किसी का ध्यान उसकी तरफ नहीं था।

इसके बाद अनु से कई महीने तक नहीं मिला। उसके घर के पास से गुजरने के बावजूद वह कतराकर निकल जाता। बेवजह कहीं जाना उसने छोड़ दिया। महीने में कभी-कभार घर पर करने के लिए सौ-पचास रुपये का काम मिल जाता, उसी के सहारे महीने भर गाड़ी खिचती।

उस दिन राह में अनु मिल गयी। जबरदस्ती अपने घर ले गयी। उसकी शादी होने वाली थी। चाय पिलाकर वह ढेर सारी नसीहतें देने लगी।

उसने कहा था—"अब कहीं जम क्यों नहीं जाते हो। ऐसा कब तक चलता रहेगा। बेकार रहने पर भी सिगरेट छोड़ नहीं सकते। तुम्हारे मुंह से सिगरेट की बू आती है, पास नहीं बैठा जाता।"

मानो, हमेशा उसके पास बैठे रहना चाहती हो। अनु को वह समझ नहीं पाया। एक बार यह बात अनु से कह दी तो उसने कहा—"जिन्दगी-

भर आदमी साथ रहकर भी एक-दूसरे को नहीं समझ पाता। फिर तुम किसी को न समझ पाने की बात क्यों करते हो !"

उसके पास कहने को कुछ था नहीं। ढेर सारी बातें अनकहे ही चुक गयी थीं। अनु ने महीने भर पहले ही अपनी शादी में आने को कह दिया और शादी के बाद भी आते रहने को कहा। एक बार अपने मंगेतर से भी उसका परिचय करा दिया। खुद को फटेहाल देखकर पहली बार उसे शर्मिन्दगी महसूस हुई।

बेकार रहने के बावजूद वह ऐन शादी के दिन ठीक बारात आने के वक्त अनु के घर पहुंचा। अनु भीतर के कमरे में अपनी सहेलियों के बीच सजी-संवरी बैंठी थी। बस अपना चेहरा दिखाकर उल्टे पांव लौट आया था।

अनु के विदा होने के बाद उसे पहली बार लगा कि वह बेहद अकेला हो गया। अनु के रूखेपन के बावजूद खालीपन का अहसास हुआ। न चाहते हुए भी दूसरे दिन वह अनु की ससुराल पहुंच गया। अनु की आंखों में अजीब-सी खुमारी थी, उसकी बातचीत का लहजा ही बदल गया था।

उसने सबसे मिलना छोड़ दिया। सब उसे निकम्मा समझने लगे थे। उसके पीछे सब उसकी बुराई करते। उसका मुंह तीता हो जाता। जब किसी के आगे हाथ नहीं पसारता तो बेकार उसके पीछे क्यों पड़े रहते हैं—कई बार वह सोचता।

गांव जाने का कई बार मन होता लेकिन फिर सोचता, क्या होगा गांव जाकर। पिता जी अक्सर नसीहतें देते। वह अक्सर कहते—"और भी तो लोग हैं। लोग तरक्की करते हैं और एक तुम हो—पीछे की तरफ चलते हो।"

वर्षों पहले उसकी शादी हो गयी थी जब इण्टर में पढ़ता था। घरवालों को खेत में काम करने के लिए एक नौकरानी की जरूरत थी जिसकी कमी उसकी पत्नी पूरी कर रही थी। बेकार रहने की वजह से वह अपने ही घर में अलग-थलग पड़ गया था। उसकी कोई परवाह नहीं करता। उसकी पत्नी सारा दिन बैल की तरह काम में जुती रहती। उसके बेकार रहने का दण्ड पत्नी को भी भुगतना पड़ रहा था।

पत्नी ने कई बार उलाहना दिया। वह कुछ भी जवाब नहीं देता। सारा दिन खटने के बाद तबीयत खराब होने पर भी पत्नी का किसी को ख्याल नहीं होता, उन्हें अपने काम से मतलब था। कई बार वह तेज बुखार में ही खेतों में गयी थी। वह रोकता भी किस अधिकार से।

पत्नी ने कहा था—"तुम अगर कहीं काम करते तो क्या मेरी ऐसी दुर्दशा होती ? लोग शादी होते ही अपनी औरत को साथ ले जाते हैं और एक मैं हूं। इतने बरस हो गये, तुमने मुझे क्या सुख दिया है। आखिर अपना दुःख किससे कहूं ?"

वह सोने का बहाना करके आंखें मूंदे चुपचाप पड़ा रहा। उसके पास कोई उत्तर नहीं था।

पत्नी से कई बार अनु का जिक्र किया था उसने। पत्नी ने कहा भी था, जब इतनी बड़ी अफसर से तुम्हारी जान-पहचान है तो नौकरी के लिए क्यों नहीं कहते हो। पता नहीं क्यों उसने हामी भर ली थी। गांव से लौटते ही उसने अनु से मिलने का निर्णय कर लिया।

अनु के घर पहुंचा तो दफ्तर जाने के लिए तैयार थी। अब वह काफी बदल गयी थी। तन्वंगी अनु काफी फैल गयी थी। उसे देखा तो बोली—"क्यों कोई खास काम है ?"

उसका बात करने का तरीका काफी औपचारिक था। वह खून का घूंट पीकर रह गया। उल्टे पांव लौट जाने को हुआ लेकिन फिर किसी तरह ठिठक कर खड़ा हो गया। आखिर किसी तरह चबा-चबाकर बोला—"अपने दफ्तर में कोई जगह हो तो दिला दो।"

"ठीक है, देखूंगी। तुम कल दफ्तर आ जाना।" कहकर वह अपनी फियेट में बैठकर चली गयी। वह देखता रह गया।

दूसरे दिन वह अनु के दफ्तर पहुंचा। उसने चिट भेजी तो अनु ने उसे बुला लिया।

"सुनो, एक जगह है तो सही। पता नहीं तुम कर भी पाओगे या नहीं यह काम ! फिलहाल डिस्पैच क्लर्क की जगह है, बाद में कोई और व्यवस्था की जायेगी।"

उसने बिना सोचे हामी भर दी। वह दूसरे दिन से काम पर जाने

लगा। कुछ महीने यूं ही कट गये। अनु से कभी कोई बात नहीं हुई। वह अब उसकी अफसर थी। उसके घर भी वह नहीं गया। इतने लोगों के बीच अनु ने भी कभी उससे कोई बात नहीं की। दफ्तर में वह देखती और एक उड़ती हुई नजर उस पर डालकर अपने केबिन में कैद हो जाती।

एक दिन दफ्तर पहुंचने में उसे देर हो गयी। अनु का चपरासी उस की सीट पर खड़ा था। अनु ने उसे बुलाया था। वह केबिन में पहुंचा।

"बैठिये। आपके बारे में कई दिनों से शिकायतें मिल रही हैं कि आप ठीक से काम नहीं करते। दफ्तर के वक्त में भी आप कविता-कहानी लिखते हैं। यह दफ्तर है, सराय नहीं। बेहतर होगा कि आप कहीं और काम खोजें। यहां यह सब नहीं चलेगा। आपको देखकर दूसरे लोग भी काम नहीं करते हैं। दफ्तर का अनुशासन आपने बिगाड़ दिया है।" अनु भरी हुई बन्दूक की तरह बौछार करती रही।

उसने अपने दराज से एक बन्द लिफाफा निकालकर उसे थमाया। वह बिना कुछ कहे बाहर निकल आया। बिना कोई सफाई मांगे उसे बर्खास्त कर दिया गया था। उसने एकाउंटेंट से अपना हिसाब लिया और बिना किसी से कोई बात किये अपने कागजात समेटकर बाहर सड़क पर आ गया।

अब वह फिर सड़कों पर भटक रहा था।

● ●